

रगमच और नाटक
की
भूमिका

रगमच और नाटक की भूमिका

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली

प्रथम संस्करण
दिसम्बर, १९६५



मूल्य दस रुपये

प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
'चन्द्रलोक' जवाहरनगर, दिल्ली ७
बिक्री केन्द्र नई सड़क, दिल्ली ६
मुद्रक ग्राहवरा प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली ३२

सुरेश अवस्थी को

निवेदन

नाट्यक्षेत्र स्कूल ऑफ ड्रेमैटिक आर्ट इलाहाबाद में अनवरत छ वर्षों तक नाटक और रंगमंच बना पर छात्रा और सहयोगिया व बीच अध्ययन, अध्यापन तथा व्यावहारिक नाट्य प्रस्तुतिकरण काय करते हुए जो किंचित उपलब्धि मुझे हुई है उसने लिए मैं उम्मी महत रगकाय का ही धन्यवाद दूंगा। परम श्रद्धेय पत जी (श्री मुमित्रानन्धन पत) उन दिना मुमम प्राय कहा करन थे कि जितना जो जीवन को देगा जीवन उसका कई गुना उम देगा।

प्रस्तुत पुस्तक उम्मी का एक दान है।

रंगमंच क्षेत्र से संबंधित मभा लाग बड़ी तीव्रता से यह अनुभव करते रहे हैं कि नाटक और रंगमंच जब तक हमारे जीवन का अंग नहीं बनता, तब तक इसका कोई 'यत्ति' नहीं होता। इस निगा में सबप्रथम इसका सबब अनि वायत हमारी शिक्षा से जुड़ना ही है। जहां स हम अपनी नई पीढ़ी को व सारे रंग-मस्वार और नाट्य मयादा द मकें कि उनकी रचि और सौन्दर्यवाच उचित रंगमंच व अनुकूल बन मवे। पश्चिम में युनिवर्सिटी डिपार्टमेंट की अपनी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपनधिषया है। य एक और दंग व रंगमंच आन्दोलन की उचित निगा है ता दूसरी ओर इनस उन भाषा व नाटक और रंगमंच का, गभीर अध्ययन और अध्यापन स्तर में एक पुष्ट और स्तरीय मयादा मिलती है।

यह भीभाष्य की बात है कि हिन्दी भाषा व अन्तर्गत इस महत विषय का समारम्भ दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग न अभी किया है। निश्चय ही इस दृष्टिपूर्ण योजना का सारा श्रेय प्रोफेसर डॉक्टर नगेंद्र व मूल्यवान व्यक्तित्व का है। इस दूरदर्शिता व निष्ठा उनका नाम सदा स्मरणीय रहेगा।

प्रस्तुत पुस्तक मूलतः रंगमंच और नाटक की भूमिका है। इधर मस्कृत से लेकर मध्ययुग तक तथा उधर ग्रीक थियटर में रम्पोरेण तक। इस व्यापक और सम्पूर्ण भूमि व बीच में रंगमंच और नाटक व स्पष्ट व्यक्तित्व व अध्ययन का मैं प्रयास किया है—ताकि दोनों विभिन्न रंगभूमिया, पूव और पश्चिम के प्राधुनिक रंगमंच व स्वरूप और प्रवृत्ति का महज अभिमान हम आग कर सकें।

प्रस्तुत पुस्तक में मूलतः रंगमंच की निश्चित व्यवधारणा पर विशेष धन दिया गया है। मार्ग अध्ययन रंगमंच व ही परिश्रेय में किया गया है। भारतवर्ष में, विशेषकर हिन्दी में नाटक का अध्ययन अभी तक केवल काव्य तथा साहित्य स्तर पर ही होता रहा है। इस कारण भी रंगमंच की दृष्टि का अभाव सदा बना रहा है। इस तरह रंगमंच के व्यापक और गहन स्तर में ही इस पुस्तक की कल्पना तथा मरचना की गया है।

पाश्चात्य देशों में प्राचीन और मध्ययुगीन नाटक रंगमंचीय कार्यक्रम, नाट्य प्रयोग का महत् अध्ययन उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से ही 'रंगमंच' के परिप्रेष्य में होने लगा था। भाग्यवश में अनेक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कारणों के फलस्वरूप इस रंगमंच-दृष्टि का सर्वथा अभाव बीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध तक रहा है। अपनी प्राचीन नाट्य निधि तथा रंग क्रिया-कलाप का रंगमंच के स्तर पर समुचित अध्ययन स्वातन्त्र्योत्तर भारतवर्ष की देन है। जबकि इन देशों की चेतना प्रायः एक युग बाद गभीर रूप से व्यावहारिक रंगमंच क्षेत्र में कामरत हुई है। जबकि आधुनिक रंगमंच—अवेषण में स्वभावतः इस जागरण को (चेतना) अपनी प्राचीन, शास्त्रीय और लोक, पूर्य और पश्चिम—इस सब नाट्य-सामग्री तथा रंग क्रियाकलापों के वास्तविक अध्ययन और उन सब में व्याप्त विविध रंगमंच कला तथा प्रकृति को समझने और ग्रहण करने की अपरिहार्य आवश्यकता पड़ी। इस सन्दर्भ में यह भी सच है, कि इस रंगमंच अवेषण का काम वही कर सकता है जो व्यावहारिक रंगमंच में एक सज्जन सचेत कार्यकर्ता की व्यक्तित्व का सतत जी रहा है। या जो उस महत् व्यक्तित्व को जीने की कामना करता है। वरना केवल बुद्धि द्वारा किसी भी देश युग, प्रवृत्ति व नाटक और रंगमंच का पूर्ण रूप में न समझा ही जा सकता है, न ग्रहण ही किया जा सकता है।

इस पुस्तक में जान बूझकर नाटक से सम्बन्धित उन तथ्यों और पक्षों का विस्तृत अध्ययन नहीं किया गया है जिनका अध्ययन माहित्य और काव्यशास्त्र के स्तर से यहाँ पर्याप्त मात्रा में किया जा चुका है।

वास्तविक भर्षों में यह अध्ययन सम्पूर्ण होगा अपन आगामी भाग में आधुनिक रंगमंच के माध्यम।

यह पुस्तक यथाशीघ्र निम्न की प्रेरणा मुझे डाक्टर विजयदत्त स्नातक ने दी। मैं उन्हें धन्यवाद देकर उस महत् क्षण का मूल्य नहीं घटाना चाहता।

इस पुस्तक लेखन के पीछे प्रख्यातस्वरूप उस अवाध इतिहास की मरवाणी मदा काय करती रही है जहाँ भारत और पश्चिम में अनेक विद्वानों इस क्षेत्र में अपनी अनेक उल्लेखनीय वृत्तियाँ प्रस्तुत की हैं।

वह सब श्रुति श्रुति मेरे माथे पर है।

साथ ही कुछ सस्यामा—भारतीय नाट्य सभ, मनीतनाटक अकादमी, नगन स्कूल आफ ड्रामा, तथा मित्र—श्री नमिचन्द्र जन गन्धीर सिंह, गान्धिविद्यार्थी के प्रति वृत्तज्ञ हूँ जिन्होंने अनेक स्तरों से इस पुस्तक में मेरी महामना की है।

अनुक्रम

○○○○○○

रगमच-प्रस्तावना

१—६

पश्चिम का 'थियटर' तथा भारत का नाट्य और रगमच ।
थियटर और रगमच ।

क रगमच अन्वेषण

१०—१७

रगमच मनुष्य की एक सनातन प्रवृत्ति । रगमच एक समूह
मत्स्य । रगमच में नाट्य-कृति । नाट्य-कृति में रगमच का मूल
मत्स्य । रगमच क्या है ?

ख रगमच और उसकी रीति

१८—२३

प्रसत्याभासी भावधर्मी रीति । सत्याभासी प्रतिनिधान रीति ।
रगमच की प्रक्रिया । रगमच के भात चरण ।

पहला भाग

१ सस्कृत रगमच कृतित्व पक्ष—रूपक (नाटक)

२४—४१

सस्कृत नाटक (रूपकत्व) । नाटक के तत्त्व । अथप्रकृतियाँ ।
अवस्थाएँ । संधियाँ । पात्र अथवा नेता । रस । नाटक में
रग-वर्जित सत्य । नाटक का स्वरूप और प्रकृति । धर्मिताएँ ।
लाक्ष्यमिता । लोक-नाटक की परम्परा और नाट्य रूढ़ियाँ ।
अनुष्ठानगत कुछ रग-परम्पराएँ । लोकनाट्य रूढ़ियाँ ।
नाटक के प्रमाण । नाट्यांग । नाटक के विषय । नाट्यगत
मान्दताय और भारतीय जीवन-ज्ञान । सस्कृत नाटक में संधप
की स्थिति ।

२ सस्कृत रगमच प्रस्तुतिकरण पक्ष

४३—७१

सस्कृत नाट्य प्रदर्शन (प्रस्तुतिकरण) की परम्परा और

पद्धतियाँ । प्रस्तुतिकरण की मूल दृष्टि । ग्रहस्थ और नपथ्य ।
मूर्छा । नाटक तथा अभिनय । रगमच का अभिनय पक्ष ।
अभिनय पद्धति के मूल तत्त्व । मण्डल और गति । करण,
अगहार और रेचक ।

७३—७७

७८—८०

दशक

रगभवन—प्रेक्षागृह

मत्तवारिणी ।

८१—८६

५ भारतीय रगमच इतिहास और परम्परा

संस्कृत रगमच का प्रारम्भ । इतिहास और परम्परा । मध्य
कालीन परम्परा । धार्मिक नाट्य परम्परा ।

दूसरा भाग

६१—१२१

६ पाश्चात्य रगमच कृतित्व पक्ष—(डामा)

डायोनिसस का थियटर । डामा क्या है ? अनुकरण सिद्धांत ।
इच्छाशक्ति का द्वन्द्व । डामा की मौलिक विशेषता । दशक
सापेक्ष । सत्याभास का प्रश्न । डामा का मूलाधार । डामा
और ड्रामेटिक । धर्मितायें । सक्लनत्रय । काय की एकता ।
एकांत प्रभाव की एकता । डामा का प्रतिमान । थियटर और
डामा । डामा की गिल्फविधि । डामा के तत्त्वों का अध्ययन ।
त्रयावस्तु । उद्घाटन । अवपण । आक्रमण बिन्दु । पूर्व
छाया । सक्ल । चरमसीमा । स्थग । निवहण । अविवृतियाँ ।
चरित्र । विचार । भाषा । संगीत । दृश्यता ।

१२२—१२३

१२४—१२५

डामा में स्थग की स्थिति

दुष्मान्तकी

दुष्मान्तकी की आत्मा । दुष्मान्तकी की आत्मा के दो मूल तत्त्व ।
भागीय दृष्टिकोण से इसका अंतर और तात्त्विक समीक्षा ।
दुष्मान्तकी के तत्त्व । दुष्मान्तकी का स्वरूप और प्रवृत्ति ।
मेनोड्रामा (घनिनाटक) ।

रामाय सुखातकी शली । शेक्सपियर की सुखान्तरी गैली ।
शेक्सपियर की सुखान्तरी की प्रकृति । सुखातकी के प्रकार ।
सुखातकी का प्रदर्शन । प्रहसन ।

७ पाश्चात्य रंगमंच प्रस्तुतिकरण पक्ष

१४३—१५०

निर्देशन । अभिनेता और अभिनय । मंच तथा प्रस्तुतिकरण
संज्ञा ।

८ प्रेक्षागृह

१५१—१५५

प्रेक्षागृह तथा प्रस्तुतिकरण । प्रीक प्रेक्षागृह । मध्ययुगीन प्रेक्षा
गृह । एलिजाबीथन रंगमंच (प्रेक्षागृह) । रेनसा—'प्रोमीनियम
थान मंच' ।

९ दशक

१५६—१५७

१० पाश्चात्य रंगमंच इतिहास और परम्परा

१५८—१६४

रामन थियेटर । मिडीबल थियेटर । रेनेसा—नवजागरण काल ।
एलिजाबीथन थियेटर । फ्रेंच क्लासिकल थियेटर । रेस्टारेगन
थियेटर ।

परिशिष्ट

१६५—१६८

अपेजी हिन्नी पारिभाषिक शब्दावली

चित्र-सूची

१ रगमञ्च क्या है ?

मुखोटाधारी मनुष्य

चित्र, श्री गोविन्द विद्यार्थी के सौजन्य से

२ रगमञ्च अन्वेषण

लोकचर्मी नाट्य परम्परा

३ रगमञ्च का विकास

आस्ट्रेलियन समाचार ब्यूरो से प्राप्त चित्र

४ रगमञ्च की प्रक्रिया

आस्ट्रेलियन समाचार ब्यूरो के सौजन्य से

५ रगमञ्च और उसकी रीति

चित्र, श्री गोविन्द विद्यार्थी

६ लोक रगमञ्च

चित्र श्री गोविन्द विद्यार्थी

७ संस्कृत रगमञ्च प्रस्तुतिकरण पक्ष

पूव रग, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के सौजन्य से

८ अभिनय, नत

९ अभिनय, नट्य

१० विदूषक

चित्र, श्री गोविन्द विद्यार्थी

११ भास के 'मध्यम व्याघ्र' के दो पात्र

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के सौजन्य से

- १२ नाट्य धर्मों परम्परा के पात्रों की वेशभूषा
भारतीय नाट्य सघ व सौजन्य से
- १३ लोचधर्मों परम्परा के पात्रों की वेशभूषा
भारतीय नाट्य सघ व सौजन्य से
- १४ लोक नाट्य
- १५ रंगभवन और प्रेक्षागृह—प्राचीन भारतीय रंगभवन
चित्र, भारतीय नाट्य सघ व सौजन्य से
- १६ कोणाक का नट मंदिर
- १७ भारतीय रंगमंच इतिहास और परम्परा
'जजर' नामक इन्द्रधनुज पूजा
चित्र, श्री गोविन्द विद्यार्थी के सौजन्य से
- १८ मध्ययुगीन धार्मिक नाट्य परम्परा
अकिया नाट्यरूप चित्र श्री गोविन्दजी
- पाश्चात्य रंगमंच
- १९ पाश्चात्य रंगमंच ड्रामा का प्रतीक
- २० शेक्सपियर रंगमंच, किंगलियर
- २१ रंगभवन तथा प्रस्तुतिकरण
श्रीव विद्येटर
- २२ ओलम्पिक थियेटर
- २३ एंटीजाबोयन थियेटर
- २४ 'नोह' ड्रामा का मंच
चित्र भारतीय नाट्य सघ के सौजन्य से

रगमच और नाटक
की
भूमिका



रगमच-प्रस्तावना

पश्चिम का 'यियेटर' तथा भारत का 'नाटय' और 'रगमच'

श्री भरत मुनि प्रणीत नाटय शास्त्र में 'नाटय' शब्द का प्रयोग और व्यवहार बहुत ही व्यापक अर्थ में हुआ है, जिसकी अपनी मर्यादा और विशेष अर्थ गौरव है। यहाँ 'नाटय' में नाट्य केवल नाटक अथवा रंग में नहीं है, बल्कि इसमें अन्तर्गत नाटक (कृति) रंग, वास्तु अभिनय रस, छन्द, नृत्य संगीत अलंकार वेगभूषा रंग शिल्प, उपस्थापन पात्र और दृशक समाज सब है—और इन सब का शास्त्र नाटय शास्त्र है। नाटय शास्त्र का प्रथम अध्याय का एक ही मानहवा में मर्यादा का स्वयं प्रमाणित करना है।

न तत्तत्तान न तच्छिल्प न सा विद्या न सा कला ।

नस्तौ योगो न तत्कम नाटयेऽस्मिन् न बुध्यते ॥

अध्ययन (अर्थ एवं दृश्य) से प्राप्त किया ऐसा काद नान नहीं है, काद नहीं है, विद्या नहीं है कला नहीं है योग नहीं है कम नहीं है, जो इस नाटय में दखा जाना है।

नाटय नाटय साहित्य में यियेटर शब्द का व्यवहार और अर्थ-गौरव भी नाटय का अनुरूप है। यहाँ 'यियेटर' के अंतर्गत नाटय-साहित्य का अर्थ, अभिनय उपस्थापन, रंग शिल्प, रंगभवन रंगगाथा और नाटय-नाचन और इन सबका शास्त्र समाहित है।

ठीक इसी प्रकार सस्कृत में 'रंग' शब्द का भी अपना विशेष अर्थ-गौरव है। रंग के अन्तर्गत रंगभूमि और रंगगाथा दोनों भाग एक ही में समाविष्ट हैं। विष्ट चतुरस्र और त्रिकोण ये तीनों रंग के प्रकार हैं। इन रंग प्रकारों में विष्ट रूप से रंगभूमि और रंगगाथा के स्वस्व का वर्णन मिलता है। विष्ट चतुरस्र और त्रिकोण की रंगगाथा में किन्हीं भूमि हानि चाहिये उसका मानसार क्या हो, उसमें किन्तु अर्थ ही किम वगैरे शब्द कहीं और किम विधि से बढेंगे—उन सबका सविस्तार वर्णन नाटय शास्त्र में मिलता है। इसी प्रकार दूसरी ओर इन तीनों प्रकार के रंगों में रंगभूमि का स्वस्व

क्या है। उसका जितना भाग, बिना माप से रग जाण और दममे नपथ्य, रग गोप रग पीठ मत्तवाणी और यवनिका आदि की क्या स्थिति है, इन सबका घट्यत चपानित निरूपण यहाँ मिलता है। वस्तुतः इसी का 'नाट्य' का वास्तु शास्त्र कहा गया है।

पर 'नाट्य शास्त्र' की परिचय व 'थियेटर' शब्द के अनुक्रम मर्यादा और इसका अर्थ-गौरव भरत मुनि व 'नाट्य शास्त्र' काल तक ही सुदृढ़ रहा—तोसा स्पष्ट प्रकट जाना है।

क्योंकि प्राग चलकर धनत्रय न दगारूपकम म—जो भरत के नाट्य शास्त्र के रूपक विषयक सिद्धांतों का सर्वांगीण विवचन प्रस्तुत करता है नाट्य-शास्त्र के 'नाट्य' की मर्यादा और उसके विनाल अर्थ गौरव को बखल रूपक के क्षेत्र में सीमित कर लिया है। फिर तो स्वभावतः नाट्य को रूपक अथवा नाटक के ही अर्थ में ग्रहण कर केना दगारूपकम व रचना-काल के बाद मस्कृत व समस्त नाट्य शास्त्रियाँ और रस शास्त्रियाँ के लिए सहज ही हो गया। क्योंकि तब नाट्य शास्त्र को छोड़कर 'दगारूपकम' ही शब्द के नाट्य शास्त्र तथा रस शास्त्र के अर्थात्—प्रताप रूढ़ीय, गरावसी साहित्य दपण नाट्य-दपण और रस मजरी आदि का उपजीव्य रहा।

जगता है कि बालान्तर में एक समय ऐसा आया कि नाट्य शास्त्र ही विलुप्त हो गया। भरत का नाम तो लोग लेते रह पर उन विद्वानों को नाट्य शास्त्र के ज्ञान न था सब। आधुनिक युग में पश्चिम के अनेक स्वनामधेय विद्वानों ने नाट्य शास्त्र का अनुमधान किया। इस तरह जो कुछ भी प्राप्त हुआ उसका नये मिर से सम्पादन और नव संस्करण हुआ। और जब इसका अनुवाद होने लगे तथा दूसरी व्याख्याय प्रस्तुत की गयी, तब स्वभावतः नाट्य शब्द का अनुवाद तथा अर्थबोध ड्रामा से किया गया। फिर यही काय जब भारत के विद्वानों ने किया तब उन्होंने भी नाट्य का अनुवाद एवं भावग्रहण नाटक से ही किया। प्राग चलकर इससे यह अर्थ हुआ कि पश्चिम के ड्रामा और मस्कृत के नाटक का एक ही भाव में दमना अथवा ग्रहण करना शुरू कर दिया गया। वर्तमान मध्य में ड्रामा शब्द का अनुवाद नाटक स्वीकार किया जा सकता है पर ड्रामा नाटक (मस्कृत) का पर्याय हो जाय, यह दृष्टिकोण भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों नाट्य धर्मिताओं पद्धतियों तथा रग मस्कारों के विपरीत है। इसमें सबसे बड़ा दोष और हानि यह हुई है कि आज नाटक का विद्यार्थी तथा रसभोगी, पूर्व-पश्चिम की नाट्य-मपत्ति को सही दण

न ग्रहण नहीं कर पाता है। मेरा विश्वास है, इस विरोधी प्रकार और विभिन्न प्रयोग की नान्य उपपत्तियाँ व रस ग्रहण एवं सही मूल्यांकन से व विद्वान ही वचन रह गये जिन्होंने 'ड्रामा' और 'नाटक' का एक ही अर्थ लिया।

हिन्दू अथवा संस्कृत रंगमंच का नाटक शाकुन्तलम् है और पश्चिम का ड्रामा हेमलेट है।

आगे चलकर हमारा सम्पर्क बहुत समीप से पश्चात्य नाट्य-साहित्य से हुआ। पश्चिम का 'थियेटर' शब्द अपने उसी अर्थ गौरव के साथ हमारे सामने आया। संयोग की बात है कि हिन्दी के सर्वप्रथम पदास्वी नाटककार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जिन्होंने अनन्त मौलिक नाटक लिखे संस्कृत, उगला तथा अंग्रेजी नाट्य साहित्य से नाटक अनुगृहीत किये तथा नाटक से सम्बन्धित अनेक लेख भी लिखे—विशेषकर 'यूरोप में नाटका का प्रचार जमे विषय पर' किन्तु उन्होंने भी इस व्यावहारिक दिशा में कुछ नहीं कहा। जो कुछ अपने लेखों में उन्होंने लिखा, वह एक और प्राचीन नाट्य शास्त्र के कुछ नाटक सम्बन्धी सामान्य नियम तथा टीका स्वर से उनकी परिभाषायें हैं और दूसरी ओर भाषा नाटक और अंग्रेजी नाटक के इतिहास पर उनके अपने विचार हैं। परन्तु वही भी भारत-दुर्गी न न तो संस्कृत नाट्य शास्त्र व 'नाट्य' शास्त्र के अर्थ गौरव को ही पुनर्स्थापित किया अथवा उसके लिये नया गन्ध ही दिया न तो अंग्रेजी व थियेटर के स्तर से भारतीय और पश्चात्य नाट्य साहित्य को ही देखा।

यस्तुतः यह नये भारत-दुर्गी पर उतता आरापित नहीं होना चाहिये—मूल दोष भारतीय समीक्षा प्रणाली का रहा है। भरत मुनि के नाट्य शास्त्र के उपरान्त काव्य-क्षेत्र में एक-मे एक बड़े आचार्य अवतरित हुए भामह, दण्डी, धामनी, कुतल और पंडितराज जगन्नाथ पर इनमें से एक भी आचार्य ने यह गुण नहीं कि काव्य व ही अतिसत मुख्य स्थान पाने वाले रूपक अथवा नाटक के 'नाट्य' सम्बन्धी सिद्धांत तथा रूपा पर व अपनी महत् लेखनी से समुचित प्रकाश डालें। फल यह हुआ कि नाट्य शास्त्र में जो महत्त्वपूर्ण स्थापनाएँ नाटक व सम्बन्ध में थी उनकी न आगे प्रकाश ही मिला, न उनकी संवृद्धि हो हुई। अतः स्थान पर भरत मुनि ने जिस रस निष्पत्ति का विवेचन और उसकी स्थापना विगुह रूपक अथवा नाटक व ही प्रथम में की और उन्होंने समूचे शास्त्र का अधिकांशतः 'नाट्य' व ही अतिसत रखकर दम्भा फिर भी शास्त्र के आचार्यों ने काव्य शास्त्र के उम विराट वरातल का बहुत ही सीमित कर दिया। रूपक और नाट्य को तो जस आचार्यों ने मुक्त ही दिया। यद्यपि नाट्य

शास्त्र से ही प्राप्त प्रत्यात रस मूत्र विभावानुभावव्यभिचारि सवागात्स निष्पत्ति प्रयवा का य-मूत्र का प्राग विभिन्न मम्प्रदायो—अलवार गीति वशाकिन और ध्वनि म जोट दिया, और उनक अति मूम और विस्तृत विवचन हुए, पर दुर्भाग्यवश मून नाटय' ही पीछे छाड दिया गया।

यह व्यवहारिक दृष्टि भेद हमारे नाटय निर्माण म बहुत ही अमंगलकारी रहा है और नाटक के समस्त पक्ष और मायाम मृजन और विवचन इन दोनों घरातला से अविकसित हो रह गये तथा हमारी समूची नाटय सम्पत्ति मूल्यांकन विहीन रह गयी। फलतः हमारे प्राधुनिक नाटय का वह महान बल और महती प्रेरणा उस स्तर से नहीं प्राप्त हो सकी जिस तरह प्राधुनिक पाश्चात्य थियेटर 'प्रथवा नाटय' को वहाँ की प्राचीन नाटय सम्पत्ति व नैतिक मूल्यांकन तथा दृष्टि से प्राप्त हुई है। हर देश का 'नाटय वहाँ की प्राचीन सम्पत्ति तथा ऐतिहासिक उपसर्गियाँ एवं परम्परागत मूल्य व विकास क्रम में नित-नूतन और समृद्धिशाली होता जा रहा है। बिना इस किसी भी देश में, भाषा में या नाटय आन्दोलन हात में प्रयवा जो नाटक रच जाते हैं वे प्रथम गतिहीन एव जारज रहकर मर जाते हैं और अविष्य म उनसे कोई भी नाटय सन्धान विकसित नहीं हो पाता। हमारे प्राधुनिक नाटय प्रादान की गतिहीनता व पीछे इस सत्य का बहुत बड़ा हाथ रहा है।

थियेटर और रगमच

जयानकर प्रसाद १ भा पश्चिम के अपने अध-योग्यपूर्ण शब्द थियेटर व निय मम्भवत रगमच शब्द का प्रयोग नहीं किया।^१ इस शीपक के अन्तगत मुख्यत रगमच से तात्पर्य रगभूमि अर्थात् अग्रेजी व स्टेज से ही लिया है— व लिखत है, रगमच म भी दो भाग हात थे। पिछले भाग को रगनीप कहत थे और सजस आगे का भाग रगपीठ कहा जाता था।^२ वस्तुत रगभूमि का यह विभेद नाटय शास्त्र व ही आधार पर है। परन्तु नाटय शास्त्र म कहीं भी इस तरह रगमच शब्द का व्यवहार ही नहीं हुआ है और मुख्यत 'स्टेज व सदम म यह तो अमभव ही है।

- १ 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध व अन्तगत अनुक्रम म छठा निबन्ध, 'रगमच पृ० ६२। भारतीय अक्षर, पश्चिम संस्करण।
- २ 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' के अनुक्रम अनुक्रम में छठा निबन्ध, रगमच पृष्ठ ६४। भारतीय अक्षर पश्चिम संस्करण।

जाना है कि पश्चिम के थियेटर शब्द से यहाँ के विद्वानों ने उमक केवल तक ही पक्ष—भवन, मंच अथवा स्टज को ही लिया, अर्थात् थियेटर के वास्तु पक्ष का। जेप पक्ष का भाव ग्रहण हा ही नहीं सका। इसी लिए 'थियेटर' के पक्ष पर 'रगमच' को भी लोगो ने स्वभावतः वास्तु-स्तर में ही लिया।

परिप्रेक्ष्य की यह निम्न दुषटता ठीक उसी प्रकार हुई जैसे संस्कृत समीक्षा क्षेत्र में नाट्य शास्त्र के प्रति दृष्टि है। 'नाट्य' के गौरव-पूर्ण क्षेत्र और सामान्य में थियेटर के ही नहीं उन्हीं अथ-गौरव के समान नाटक, रगमचन, रग गित्य अभिनय आदि सभी पक्ष समाहित थे, पर आगे के लोगों ने नाट्य का केवल नाटक (नाट्य के अर्थ एक अथ अथवा पक्ष) के ही स्तर पर विध्वंस कर दिया।

'थियेटर' के निम्न रगमच बहुत उपयुक्त शब्द नहीं है पर संक्षेप था। थियेटर में भी अधिक उपयुक्त गौरव-पूर्ण शब्द जब नाट्य को हमने अपनी सीमाओं में तब कर दिया, तो फिर शब्द विशेष का उतना महत्व नहीं रह जाता। वास्तु महत्व है शब्द के पीछे अवधारणा भाव-वाच, अर्थ-बोध और इसमें भी अधिक उनके प्रति हितमकल्प हान का उमक और शास्त्र की दृष्टि में न्यून का।

अन्यत्र शास्त्रों में उपरान्त हम समान स्तर में पश्चिम के मध्यम में आये। हमने अपने आपका गौरव शब्द के साथ ही स्वभावन अर्थ व्यक्त शब्द का भी जया अथ-गौरव दिया। 'रगमच' को हमने 'थियेटर' के ही परिप्रेक्ष्य में ग्रहण करना प्रारम्भ किया है। अब हम 'नाट्य-शास्त्र' में व्यवहृत 'नाट्य' के ही अर्थ गौरव के अनुकूल कहने लगे हैं—संस्कृत रगमच (Hindu Theatre), आधुनिक रगमच (Modern Theatre), रगमचीय शास्त्रालय'। रगमच शब्द स्वायत्त बोलामय्या'। रगमच शब्द आत्मिक परम्परा'। रगमच पूरी सामाजिकता की अंग है। 'रगमच आत्मगत'। शोक थियेटर, थ्रिलिंग थियेटर थियेटर ऑफ़ क्विजियर के ही अर्थ गौरव शब्द ठीक उसी परिप्रेक्ष्य में आज हमने 'रगमच' को अपना गुरु किया है—प्रवाद का रगमच', वगैरा और मगठी रगमच तथा भारतीय रगमच। दूसरे सदन में रगमच का अर्थ और भी व्याप्त हो जाता है, जैसे 'हिन्दू रगमच', ग्रीक थियेटर और 'मास्का शब्द थियेटर'। यहाँ हिन्दू रगमच के अर्थवाच में एक और संस्कृत का समस्त नाट्य नाट्य, नाट्य शास्त्र है दूसरी शब्द उमक व्याप्त और प्रतिपादित मंच स्वभाव और प्रस्तुतिकर्मा का समूचा भावविचित्र है। अभिनय और रग गित्य

का सम्पूर्ण मत्त्व है। तीसरी और उसमें समूचा युग धन है उसकी कला रचि आनन्द भोग का स्तर और उसकी विलास भूमियाँ हैं। अर्थात् उस समूच युग का नाटककार अभिनता पस्तुतकर्ता, निर्देशक सूत्रधार और सामाजिक रसभागी और उनका दण्ड काल सभी कुछ यहाँ समन्वित है।

इसी प्रकार ग्रीक थियटर में भावनाय है—यूनान के समूच समाज का वक्ता डायानिसस का पूजा समारोह उनकी धार्मिक स्फूर्ति और उत्साह का प्रतीक। ए.म. और ऐटिका के नर नाटिका का जीवन और उसी नियम धार्मिक भावना, जिसमें एन्थोपोलिस के चरणा में अथ-यूनानकार उभूत होती हुई पदार्थ की रगभूमि बनाई थी 'थियटर आफ डायानिसस'। उसमें नाटकार एस्क्लस साकावचीज व्युरिपिडस और एरिस्टाक्रेम। नाट्य अनुष्ठान विधि, समूहगान मुखौटे और उनका नृत्य मगीत। नाट्य नाटिका, अरम्भ और अभिनेता भविष्य।

जीवन में रगमच का एक आध्यात्मिक पक्ष भी है। हम कहते प्राम है जीवन रगमच है। हम इसमें अपनी पारता भागकर समय को प्रशान्तकर प्रस्थान कर जाते हैं। हम जीवन अभिनता हैं। हम जीवन और काल की रगभूमि में प्रवणकर राग विराग मुक्त दुःख सत प्रमत कुरूपता एवं विराग सौन्दर्य के मासी बनने हैं और अपनी गति से काल को भी निर्माहित कर ले जाते हैं—

रगमच जब तिय पगु धारी ।

देखि रूप मोहे नर नारी ॥

नूपन सकल सुदेश सुहाये ।

अग अग रचि सखि-ह बनाये ॥

हरिय सुर-ह दुदुभी बजायी ।

बरसि प्रसून अपछरा गावी ॥

यह एक जीवन व्याप्त सम्पूर्ण और चिन्तन रगमच की भावी है। नाट्य, रगभूमि अभिनय रग गित्य अग रचना रूप सञ्जा गीत मगीत, विमोहित नर नारी रूप प्रक्षक वग—सब कुछ तो है यहाँ रगमच का सभी प्रामाण, सभी पक्ष।

अप-नौग्य का इस थीगयोग का साथ यह अत्यवश्यक है कि हमारी पीढ़ी और मासी पीढ़िया का रगमच की सम्पूर्ण दृष्टि और अर्थनाय—तात्त्विक एवं व्यवहारिक दोनों स्तर में प्राप्त हो।

आज यह बात नहीं है कि रगमच नवाभय में सभी साथ इस रगमच का महो दण्ड से ही न गत है—अधिकांश लोग यही नहीं समझ पाय है कि रगमच क्या है? आज भी नाग रगमच का भवन और स्तंभ के ही अर्थ में लत है मनोरंजन अथवा अतिरिक्त वायवत्ताय के ही रूप में। यह हमारे लिये आश्चर्य दुःख की बात नहीं है। हममें सभी अभा ता नाटक का, उसकी कुछ वादित

मपादा देनी प्रारम्भ की है। रगमच की अपनी अतुल गरिमा है। हम हमन अभी (फिर से) ग्रहण किया है। इसलिये यह स्वाभाविक ही है कि रगमच के प्रति जो निम्न धारणाय, कुप्रवृत्तियाँ और कुमस्कार आज में पहले समाज में व्याप्त थे, विरामन के रूप में स्वाभाविक आज के रगमच का व भी मिल गए हैं। मरा विश्वास है रगमच को नव मस्कार, नव ग्रन्थ और उमका स्वायत्त भाव मिलत ही हमारी रगमच विषयक दृष्टि परिवर्तित हो वास्तविक और सम्पूर्ण रगमच भाव में गरिमापूर्ण हो जायगी।

बड़ा दुःख और आश्चर्य पश्चिम में कुछ परम्प विम्यात देना के रगमच विषयक दृष्टिकाल के विघटन पर अवश्य है।

क्रिमिन् फरगुसन ने अपने अति महत्वपूर्ण ग्रन्थ द प्राइटिया ऑफ़ थियटर की भूमिका में इस बात की ओर बहुत ही विद्वत्तापूर्ण एवं सार्थक ढंग में सवत किया है, क्रिमिन् पश्चात्ताप के माय-ही-माय इस तथ्य की ओर परम प्राणका प्रकट की गई है कि 'ब्राडन ग्रन्थ' 'हानीबुड' का समाज 'थियटर' के वास्तविक घम भूत घम और गौरव की भावना से दूर न हो जाय नहीं ता हम समार के नाट्य साहित्य के आनन्द और विराट धारा से ही विटिन हो जायेंगे।

अमुन काय्य एवं कला के महत्त दृष्टिकाल के स्तर पर यह सावदशिक विघटन आज के समसामयिक जीवन की सांस्कृतिक दुष्प्रता है। भारतीय रगमच का, विषयक शिन्नी राष्ट्रीय रगमच का पुनरुत्थान काय, भावा के एस ही मन्त्रमण फाल में प्रारम्भ हुआ है अतएव यहाँ पूरी सावधानी एवं विचार-गाम्भीर्य के माय सूक्ष्म ढंग में रगमच के वास्तविक क्षेत्र और मर्यादा से रगमच-वर्मी समाज को नीम्नित एवं सुमम्भूत करना है।

आज 'रगमच' का नाम उत हो जा भाव धिक् हमारे सामने महज उजागर होता है वह कुछ हम प्रकार का है आधुनिक जीवन के आनन्द प्रसादन तथा भौतिक सुविधाया में परिपूर्ण एवं विमाल रगमचन—जिसके भीतर रगमाला

- 9 Thus the very idea of a Theater as Hamlet assumed it gets lost and the art of drama having no place of its own in contemporary life is confused with lyric poetry or pure music on one side or with Editorializing and gossip on the other

जहाँ एक भाग में बुनियाद पर मज-सजाय नसबगण बठे हैं और सामन मेहराब खचिन रगद्वार और रगपीठ पर अभिनतामा द्वारा नाट्य अनुष्ठान । पहला अन्त रान—दणक का बाहर आना सार गुल, चाय काफी और सिगरेट पान । इसी भाँति दूसरा और तीसरा अंतरान और जो ढाई घण्टा की चट्ट पहल, पार स्परिव औपचारिकता सामाजिक आदान प्रदान साथ ही मनोरंजन मित्रा परिचिना में भेंट मिलाप और अपने अपने व्यवसाय की अलग भलग बातें ।

रगमच के नाम पर आज यह भावचित्र और यह अवधारणा ममकन हम आधुनिक जीवन और उससे भी अधिक सिनमा-मन्यता में प्राप्त हुई है—जिसने नि मदह रमन के स्थापक पदम सून प्रकृति गौरव एवं अथबोध को घटा दिया है ।

शेक्सपियर ने हैमरट के मुख से पियटर का 'दणक' कहा है, जो ममूची प्रकृति की ऐसी अनुकृति करता है कि जिसमें उसकी अंतरारमा की लवि और बाल की स्थिति उजागर होती है ।

आज के सामाजिक तथा पाठक कहें कि रगमच की यह प्रकृति उसका यह स्वहप 'हैमलेट' का अपने युग की अवधारणा के फलस्वरूप है । आज रगमच के प्रति यह अपेक्षा नहीं बन सकती । हम आज जिस युग में जी रहे हैं, उसकी अपनी स्थापन सम्पत्ति है कला कवि है और मौल्यबोध के अपने माप दंड हैं ।

पर ज़रा चिन्ता करने की बात है—कि क्या यह सब भी है । क्या हमने कभी गभीरता से साचा है कि हमारा युग क्या है ? इसका व्यक्तित्व क्या है ? और क्या इस युग की प्रकृति और इसकी अंतरारमा इसका सारा दुख मुख, स्वप्न और आशा पीटा और आम आज हमारी नाट्य कृतियाँ और उनके अनुष्ठानों में प्रतिबिम्बित है ? मैं अनुभव करता हूँ कि हम आज अपनी नाट्य कृतियों तथा नाट्य अनुष्ठानों से अपने समय को जीवन का और अपनी प्रकृति की अन्तर्द्वि को नहीं देना पा रहे हैं । लगता है जैसे हमारे बीच में कोई जड़ मशीन का खड़ी हुई है जिसने रगमच की ममूची प्रकृति, स्वरूप और गौरव को आच्छादित कर रखा है । रगमच को उसके मूल स्थान में ही स्थानांतरित किया जा रहा है और तभी रगमच के अभिनतान में आज अन्तना सबकु उपस्थित है ।

यह ठीक है कि आज हम बालिदास अथवा शकम्पीयर के रगमच का निमाण नहीं कर सकने, क्योंकि नि मदह वह अपने युग की एक विशेष सृष्टि है—अनुभूति है । वह इतिहास दुहराया नहीं जा सकता । पर आज यह अथावश्यक है कि, रगमच क्या है ? इसका सत्य भाव हम प्राप्त हो तथा उसकी अनुभूति हम हो जाय । जब तक हम इस महाभाव में वचित रहेंगे तब तक न हम बालिदास, शकम्पीयर आदि की महान नाट्य कृतियों का रमा

स्वात्म पा सकते हैं, न उस युग की कसा रुचि हा समझ सकते हैं और न अपने युग विज्ञाप का रंगमंच निर्मित कर सकते हैं । नाटक जस अनि गतिगाली तथा जीवन काय कना माध्यम का केवन हम साजिय न एक सामान्य प्रकार एवं विद्या के ही स्तर म देखने रह जायेंगे ।

नाटक ■ नाटक की आत्मा की अनुभूति और उसका प्रत्यक्ष ज्ञान के बिना उस रंगमंच का सम्पूर्ण सत्य भाव साजिय ।



रगमच अन्वेषण

रगमच का स्वरूप अक्षरों और उसका अर्थ गौरव जीवन की ही भांति है। यह अपने अतल में जितना गहन और अमृत है, भौतिक धरातल पर यह उतना ही मृत और विराट है। जितना ही यह एक और आदिम और सनातन है उतना ही यह गत्यात्मक और युग सापेक्ष है। यह इतना असीम और अपरिमेय है कि इसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का दण्ड पाना अभिमान करना और सबसे अधिक इस अनुभवमय कर पाना किसी समाज अथवा व्यक्ति के लिये परम साधना और सौभाग्य से ही सम्भव है।

‘रगमच क्या है?’ इसके व्यक्तित्व से परिचय कराने का अतिमहत्वपूर्ण प्रयत्न शेक्सपियर ने हेमलेट के माध्यम से किया है। हमसे पहले अभिनेताओं से इसके स्वरूप तथा घम अभिमान के विषय में कहता है

The purpose of playing, whose end both at first and now was and is to hold us as Twere The Mirror up to nature to show virtue her own feature scorn her image and the very age & body of the time his form & pressure

अर्थात् नाटक खेलने का प्रयोजन तथा उद्देश्य जमा कि आदि काल में अथवा तब था और आज भी है—प्रकृति को दर्शना सिद्धान्त है (मत) गुण को उसका प्रतिबिम्ब देना है उसकी मूर्ति का उपहास करना है तथा युग काल व शरीर को उसका स्वरूप और प्रभाव को (व्यक्त) करना है।

मात्र इतने बचन में अनन्त महत्वपूर्ण संकेत हैं, जो पा जाते हैं रगमच के मूलभूत तत्वा का निर्देश करते हैं। इनमें से तत्त्व भी है जो ससार के सभी रगमचों के मूलधार हैं और उनके स्वरूप के परिचायक हैं—जैसे रगमच का अतिकालिक तथा सनातन पक्ष युग काल तथा समाज की व्यञ्जना तथा इसके अतल में नाटक खेलने और दिवाने के स्तर में नाटक अभिनय दशक समाज आदि। वस्तुतः यह बचन शेक्सपियर के धियान के व्यक्तित्व-परिचय के सन्तुष्ट

म है जा नि मन्द अपन युग अपना कला रचि का जावन्त प्रमाण उपस्थित करता है। हेमलेटन थियटर का दर्पण की उपमा म ममभाषा है जा पादचात्य रगमच की प्रकृति और स्वरूप का सत्यतम और सुन्दर उदाहरण और उपमान है। हेमलेट का वह रगमच ऐसा दर्पण है, जा समूची प्रकृति की मफन अनुकृति करता है जा यथाव की प्रतिछवि है। पर वह रूप दाना सनातन और महाशक्तिमान है कि उसम युग और काल की समूची छवि उतर आती है।

रगमच मनुष्य की मनातन प्रवृत्ति

रगमच एक मानव प्रकृति है—अनिवार्य आन्तरिक मध्य जिनका तुलना मानव मस्कृति म उपन्यास का अर्थ विभूति नहीं कर सकती। हम आन्तरिक तर्क, जीवन की मूलान, आन्तरिक सुविधाआनया मापना क बिना रहें हमका साक्षात् इतिहास है पर किमा भी रूप म मणी, रगमच क बिना हम कभी नहीं रहें हैं। मनुष्य हान का हमारा यही प्रमाण रहा है मभवत नभी हम अमृत-पुन की मना मिलती है। रममय और कलापूत हम कह गय है।

इस सनातन तथा आत्मसिद्ध इच्छा क पीछे आधारभूत मध्य क्या है? मानव हृदय का वह कौन सी अज्ञात, प्रेरक शक्ति थी जिसम रगमच अमृत मे भूत और युग क माय मन्व चिरगामी रहा।

रगमच क प्राय मभा इतिहासकार तथा विवेचना न बताया है कि रगमच का उद्भव धार्मिक अनुष्ठाना तथा रम-कृत्या मे हुआ है, इन प्रकार रगमच मनुष्य की धार्मिक प्रवृत्ति का दन है। कुछ विद्वाना न यह भी बताया है कि मनुष्य न अपनी जगसी अवस्था म ही अपने कर्मों तथा साहसिक घटनाओं क आधार पर रग रचाना प्रारम्भ किया था।

पर आधार भूत सत्य इन स्थापनाओं म कही और गहर है—अमृत मानव की आन्तरिक चेतना और मन ही सवम अन्तिक मौखिक मृजन-मोल और नाटकीय है। नतना नाटकीय कि रूप तथा प्रकृति की मृजन-मत्ता का ही चुनौती दन वाला। मनुष्य म एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है जिनकी असीम प्राणवत्ता क बावजूद उसक विषय इतिहास मनाविज्ञान और मान्य शास्त्र न अत्र तक कुछ भी नहीं कहा है—यह है म्पान्तर करन की प्रवृत्ति अर्थात् बाह्य जगत म प्राण विम्बा तथा हृदय का स्वच्छा मृष्ट अन्त कर्ण म उद्भूत हृदय क विम्ब बढ़ा करन का मध्य। अर्थात् प्रकृति म नास्न वा न प्राण हृदय का एक अर्थ रूप न की प्रवृत्ति अर्थात् प्रवृत्ति जिनका वास्तविक रूप स्पष्टत उम अवधारणा

में प्रकट होता है, जिसे नाटकीयता कहा जाता है।

मनुष्य की यह आदिम प्रवृत्ति उसकी एक ऐसी विशेष सृजनशील शक्ति थी, जिसका पता वह सदियों तक स्वयं भी न पा सका, पर उस शक्ति को यह सनातन में व्यवहार तथा प्रयोग में लाना रहा। इस शक्ति तथा श्रुति का आभाव मनुष्य को जब हुआ होगा तब तक वह मर्यादा की चुका हागा और अपनी उस प्रवृत्ति के असत्य जाचित प्रमाणों को चुका हागा।

एक सृजन ईश्वर करता है प्रकृति करती है, पर मनुष्य इसमें मनुष्य कहा जाता है? वह तो मनुष्य तब होता है जब वह स्वयं एक अपना अलग सृजन करता है—अपन आपन एक जगत् का मौलिक निर्माण करता है। इस क्षेत्र में उस आह भुलीट नाली बेहरे और रंग पालकर ही क्या न अपन काय पूरे करने पड़े। मनुष्य की यह नाटकीय प्रवृत्ति उस अनवरन्तर का आनन्द होती है। वह स्रष्टा का आनन्द लता है। अमरत्व का दायता और ईश्वर बनने का यह आनन्द होता है। अर्थात् वह उस सबका अपने स्वयं के जगत् में प्राप्त करने को है, अनुभव कर लता है जो उसे ईश्वर तथा प्रकृति की आगे से नहीं मिलता अथवा जो उसे कभी नहीं मिलता।

भारत में यह सब के उत्सव के अंग के रूप में नाटक के प्रथम अभिनय और दूसरी ओर पश्चिम में देवता के पूजन आनन्द का इतिहासकारों ने गामिक कृत्य के स्तर से नाटक अथवा रंगमंच का आदि स्वरूप माना है। वस्तुतः यह स्वरूप मूलतः मनुष्य की उक्त सनातन प्रवृत्ति का परिचायक था जहाँ उसमें स्थापत्य और अनुकरण का सावजनिक तथा व्यावहारिक उदाहरण प्रस्तुत किया। यह गामिक कृत्य अथवा अनुष्ठानवाद में हुआ होगा पहले यह आत्मज्ञान ही रहा होगा। प्राचीन भारत के इस प्रकार के उत्सवों में सर्वाधिक महान् उत्सव द्रव्य के ध्वज स्थापना का था, जिसे द्रव्य महा अथवा 'गमहा' कहते थे। नाट्य गाम्य सभी रंगमंच को अग्रा आधार मानकर चलता है। वास्तव में जब रंगमंच के अंतर्गत नाट्य मुख्य हो गया होगा तब रंग का उत्सव ध्वज स्थापना के रूप में विनीत हो गया होगा।

रंगमंच एक अभूत सत्य

रंगमंच एक भाव है—जो अनुभूति है, जिसका अपनी असीम व्यापकता और गहराई है। इसके मूलभाव और इसकी सम्पूर्ण प्रवृत्ति के साथ ही मनुष्य जन्म लेता है। शिशु जो स्वयं ज्ञाता है और अपनी महत्त्व महती के बीच

वह जो बहुरंगी नाट्य उजागर करता है वह क्या इसी स्वाधीन भाव का उद्गम उदाहरण नहीं है ? वह जो कुछ अपने प्रत्यक्ष जगत् में रगता है उसका अनुकरण तथा उसका सजीव अभिनय उसका अपना ससार है । जय मनुष्य उसका रक्षक को समझ नहीं पाता, अथवा उसका रचित नाटक की अनुभूति नहीं कर सकता और उसमें विघ्न उपस्थित करता है तब गिणु के दुःख की चरम सीमा उसके आँसू हैं ।

बच्चा अपने इस अनुकरणमय रग-मसार के अनिर्वचन एक मृजलमय रग-मसार में बनाता है जो इन्वर और प्रकृति की शक्ति और नियमों में परे है । उमरे हम रग-मसार में पड़-पड़े खोदते हैं । मिट्टी के खिलौने राजा रानी बनकर अपना पूरा जीवनवृत्त रचा जाते हैं । वह अदृश्य नाक से परियों का अपनी छाया में उतारकर सामने धूल भाँटी में माँझ में सत्त्वपूर्ण गड़ा कर लेता है और उनसे अपनी अनाची छाँटी में वाप भरा करता है ।

गिणु के इस मृजलमय विगुह काल्पनिक रगमच का हम आप त्रिभुज नहीं समझ सकते । सम्भवतः अभी लिये बच्चा मरम द्विपर, अर्थात् अपने का हमसे पूरा अदृश्य रखकर अपना रग रचना है—जिसका पूरा नाट्य अनुभव है जिसमें किसी भी रग-भाषण की आवश्यकता नहीं पड़ती न नाट्य कृति की न अभिनय की न मंच की और न किसी शक्ति की ।

इस प्रकार रगमच मनुष्य की मूलतः आंतरिक वृत्तियों तथा उसकी सम्पूर्ण शक्ति का मृजल रूप है । मनुष्य अपने प्राप्त जीवन के भीतर से एक अपना रचा हुआ जीवन अनुभूत करता है, और सजा बनाकर दूसरे अथवा प्रकृति के दिये सीमित तथा विवर्ण जीवन में सबका भिन्न सिद्ध कर के पट्टन में गौरवाचित होता है कि 'यह मैं हूँ, यह मेरा जीवन है जिसका नियामक और उपभोक्ता मैं हूँ ।' जिस जाति एक राष्ट्र में इस प्रकार अपने जीवन का स्वयं मृजलकर रगमच के भीतर उसकी इस भाँति पूरा छवि दर्शन और उसका पूरा आनन्द लेने का क्षमता होती है, वह जाति एक राष्ट्र उतना ही महान और जीवन होता है, क्योंकि इस मूल्य स्तर से मनुष्य जीवन का सम्भारना ही नहीं करे उसका कर्ता और स्वामी भी होता है । अथवा केवल प्रकृतिप्रदत्त जीवन जीना मनुष्य की वास्तविक दासता है ।

सुतरा, शक्तिशाली और गौरवपूर्ण मनुष्य की पहचान क्या है ? यही कि वह प्रकृति का दास नहीं है, उसका भुग्रापदी नहीं है । वह एक अपना मौलिक, उसमें सबका भिन्न अपना मनचाहा मसार रचना है ।

मनुष्य का अपना विगचित मगार—यही आत्मविव रगमच है। और रचना का सम्पूर्ण विराट भाव उसकी प्रगणा—यही रगमच का चिरन्तन स्त्रोत है जिमसे वह अपनी पूरा छवि प्रत्यक्ष देखता है—अपन युग और जीवन का आत्मा का समझन और उसका आनन्द देने का वह प्रयत्न करता है। नाटक यही कारण है कि जैसे जैसे जीवन का रूप बदलता गया है जीवन में आनन्द देने की प्रवृत्ति बदलती गयी है। कम-कम स्वभावतः रगमच के रचापत्त में, रचना में परिवर्तन होता गया है।

रगमच की आत्मा नाटक अथवा नाटकीयता है और उसका समाधान धर्म प्रदान है। यह प्रदान का सत्य समान रूप में मनुष्य के नियम भी लागू है। तभी यह कहना सत्य है कि रगमच की मत्ता मनुष्य जीवन के माप है, यत्कि एक दूसरे का पयाय जमा है।

प्रदान मनुष्य का सहज धर्म है और उसका आत्मज्ञान भी और दूसरे भी भागे यह आत्म प्रदान उसकी आत्मिक प्रवृत्ति तथा मौल्य धर्म के नियम भी है।

इसी प्रदान और भावाभिव्यक्ति के ही आधार पर यह सिद्ध है कि जहाँ वही कोई एक भी नाटक नहीं लिखा गया था, रगमच का पूरा अस्तित्व तब भी था। आत्मा वाल मनुष्य ने अपने गिराह के साथ मृगया आनन्द विजयाल्लास, दैव पूजा और कृपि उत्सव अथवा कम में जहाँ ममूह नतन किया होगा वह रगमच ही था।

यह भी रगमच ही था जहाँ मनुष्य ने गिराह के सम्मुख अपनी किसी हृदय स्पर्शी घटना अपनीभूत मनोभाव को मुद्राया और संवत्सरमक भावाभिव्यक्ति के साथ, बिना किसी गठोच्चारण के व्यक्त किया होगा। पररूपण भावाभिव्यक्ति ही हम प्रकार रगमच की मूलभूत वस्तु है। हमने फिर यह न किसी रगमच की अपेक्षा करता है, न किसी विशेष मक की। बल्कि इसकी रचना, इसकी अभिव्यक्ति वही भी हम भी सर्व सम्भव है—मेत में माग में खुले मगन में मनुष्या की परिधि और उनकी भीड़ में।

रगमच में नाट्य कृति

सामाजिक और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के लिये रगमच के लिये नाटक मरिदा धर्म का अन्तर में लिखे गये प्रथम चरण में नृत्य-गीत आदि के रूप में। द्वितीय चरण में, कथा और चरित्र का रंग हालकर। और ज्या ज्या इस

भानि मनुष्य का जीवन मरण में मस्तिष्क होना गया, उसके रगमच में स्वभावतः पूर्ण रचित नाट्य कृति की अपेक्षा होती गई। और यह अपेक्षा तब होती कि रगमच का पूरा रूप, उसका सारा स्थापत्य नाट्य-कृति में अननित हो गया।

रगमच का रूप और उसका स्थापत्य भी स्वभावतः जीवन की प्रकृति के साथ मरण में मस्तिष्क होना गया।

नाट्य-कृति में रगमच का भूत मृत्यु

जब नाटक चलन में लिया गया, तब उसकी अन्तरात्मा और रचना विधि में रगमच अपने समस्त तत्त्वों के साथ कार्य करता गया। बल्कि हम इस तरह भी कह सकते हैं कि रगमच का ही अभिव्यक्ति देने के लिये लिखित अथवा अलिखित नाट्य-कृति की सृष्टि हुई। क्योंकि नाटक ही तो अपने मूल और व्यापक अर्थ में रगमच है। और नाट्य प्रवृत्ति इसका प्राण।

मनुष्य एक पूरा सारा अलिखित नाटक खेलता और ही रहा था और वस्तुतः उसमें जब रगमच में अनुष्ठान के नियम नाटक लिखना प्रारम्भ किया तब स्वभावतः नाटक चलन की समस्त विधियाँ—समस्त छन्दस्वर रग गित्य वष्य-विषय में समाहित हुए। बिना इसके नाटक नाटक ही नहीं हो सकता और नाटक चलन तथा रचन का प्रश्न ही नहीं उठता।

नाट्य-कृति और रगमच एक-दूसरे के साथ और कारण हैं दूसरे स्तर पर एक-दूसरे के पूरक और यहाँ तक कि एक दूसरे के पर्याय भी हैं।

नाट्य-कृति में नाटककार ने एक समाज एक युग अथवा काल को अपनी नाट्य रेखा में बाँधा। अर्थात् विभिन्न प्रकार के चरित्रों तथा उनके कर्मों आकाशमा, मनोवृत्तियाँ और जीवन में उनका प्रभाव और परिणामों के आकाश में तथा मकलन के ही रूप में वह नाट्य-कृति प्रस्तुत हुई। नाट्य कृति के चरित्रों के पीछे अभिनय और अभिनयता की कल्पना हुई। और यह सब, इतना बलमय, मृजनीय तानाबाना इसलिए तैयार किया गया कि उस प्रस्तुतकर्ता हम समाज में अपने आनन्द और मनोरंजन का विविध और असीम रूप दें सकें। हम एक ही स्तर में, एक ही समय, एक ही स्थान पर अपने समस्त समाज के साथ आनन्द ले सकें।

ऐक्य ही मूल में रगमच अपने अमूल्य रूप में—

- नाटककार
- निर्देशक
- प्रस्तुतिउत्तराग्न अग्न
- दायक-ममाज

व अन्तःकरण म सत्य विद्यमान रहता है और वही निरंतर सौंदर्य-वाचक साथ विकसित होता रहता है। भारतीय रम मिद्वान्त व पीछे यही सत्य मूलाधार व रूप म प्रकट है और पाश्चात्य नाट्य गान्धर्व व प्राचीन और आधुनिक रंगमंच म यही सत्य प्रमाण रचन मिद्वान्त और सम्प्रदायीयता के मूल्य की कांति म चरितार्थ होता है।

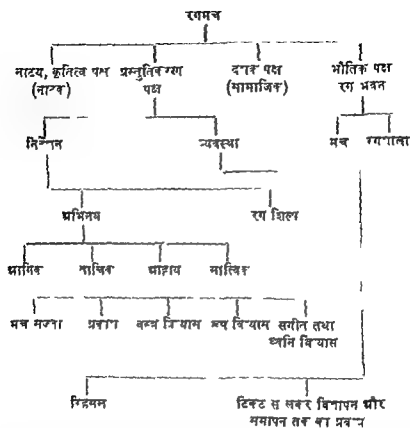
रंगमंच क्या है ?

ऊपर के विचार अनुक्रम म रंगमंच का अवधारण उमक भावना पक्ष, अथवा उसका आंतरिक पक्ष की गरिमा व स्तर स किया गया है जा निश्चय ही अवस्था इन अनुभूति का विषय है विचार विनिमय का उत्तम नहीं।

रंगमंच एक अनुभूति है उम हम रंगमंच का आंतरिक पक्ष कह सकते हैं पर जीवन म इसकी विराटता और समग्रता की स्पेक्षा और उसका विभिन्न तरका का सही अर्थों तथा उमके ही अनुपात म समझना, रंगमंच की अनुभूति का व्यावहारिक पक्ष है।

रंगमंच का इसका सम्पूर्ण अर्थ म ग्रहण अथवा इसकी महत् अवधारणा, यह आधुनिक युग व चिन्तन और व्यवहार का फल है। प्राचीन अथवा मध्ययुग म मनुष्य ने नाटक की रचना की उम मेला दत्ता और वह भावमग्न हुआ। वह इतने बड़े रंगमंच का व्यापक प्रयोग अथवा व्यवहार कर रहा है शायद वह इससे लिए इतना चेतन न था—जितना कि आधुनिक युग रंगमंच व प्रति चेतन और जागरूक हुआ है।

रंगमंच व विषय म आधुनिक युग की चेतना इतनी बड़ी है कि इस विज्ञान तक का स्तर मिला है। विभिन्न पक्षा म एक दृष्टि म देखकर रंगमंच का एक व्यापक और सही अर्थ इस युग म किया गया। हम जब रंगमंच कहते हैं तो हमारी अवधारणा और दृष्टि म इतना व्यापक अब रहना है



रगमच व इस व्यावहारिक रूप का उक्त भावचित्र निश्चय ही वर्तमान का है। रगमच अपने विविध पक्षों में—विशेषकर अपने प्रस्तुतिकरण में आज दृढ़ विभागा में बटा हुआ है इसके पीछे निश्चय ही प्राधुनिक युग के अम विभाजन की प्रवृत्ति कार्य कर रही है।

रगमच और उसकी रीति

निम्न पंथा में हमने विचार किया है कि रगमच सब भी था, जब नाटक नहीं दिया जा सकता था जबकि छात्रों में मनुष्य ने मानन्द विमोह होकर गिराह में मृत्यु किया था अपने किसी सफल मृत्यु अभियान में। बिना कुछ बोले जब उसने मुद्रा भविष्य और चट्टान-मन्त्रों ने कोई भावक्या नहीं होगी। गान हीन कथा वस्तु की नगमक्या— भावक्या।

अपने प्रत्यक्ष अर्थों में रगमच किसी विषयवस्तु को अभिनय द्वारा प्रस्तुत करने की कला है। हमने लिये इस में किसी विशेष रगमचन की आवश्यकता है, न मंच की न किसी रगमचन की। क्योंकि रगमच की प्रतिष्ठा हमकी रचना इगका प्रयोग नहीं भी किसी भूमि तब पर हा सनता है। वस्तुतः यही रगमच की मूल प्रकृति है।

कानाम्ना में जैम जग मनुष्य का जीवन उन्नत, समृद्ध और सश्लिष्ट हुआ स्वभावतः रगमच का भी वही रूप हुआ। हमने भीतर पूरा गगनित नाट्य कृति प्रापी। उस नाट्य कृति में जो जीवन प्रतिविम्बित हुआ उस उस नाटक से निकालकर मंच पर रखने और दशक को नियंत्रण का प्रयत्न प्राया। इसका फल यह हुआ कि प्रथम, रगमच का क्षेत्र बहुत ही विनाश और गहन हो गया। नम मंच, प्रस्तुतिवर्ण-तत्त्व रगमच, इन सब पन्था का अदभुत विकास हुआ। और य सब अपने आप में बहुत गहन कलातत्त्व हो गये। दूसरे, नाटक की प्रस्तुति पद्धति उसकी व्याख्या, अर्थवोध को लेकर निर्देशकों के विभिन्न विचार और उद्देश्य प्रकट होने लगे। अर्थात् सीधा गान स्पष्ट रगमच, माहित्य, कला और विज्ञान तीनों का अपने व्यक्तित्व में समष्टि ले गया।

नाट्य वस्तु का मंच पर प्रस्तुत करने के लिये उस एक निश्चित रूप, व्यवहार और अर्थ देना—इस मध्य में रगमच की रीति और प्रकृति को बहुत ही व्यापक और गहन बना लिया। एक ही नाटक के दो प्रदर्शन एक दूसरे में भिन्न हो जाते हैं। एक नाटक के दो विभिन्न निर्देशकों और प्रस्तुतकर्ताओं द्वारा किये गये प्रयोग एक दूसरे से कितने भिन्न हो जाते हैं, उनकी कलागत

आप्याय, रगबोव कितन अनग अलग हाने है, दसक असम्ब्य उदाहरण आधुनिक रगमच-क्षेत्र म मिलने हैं ।

फिर भी दो मूल प्रश्नन रीतिया हैं, जिनसे नाटक को रगमच का रूप दिया जाता है ।—

- १ असत्यभासी भावधर्मी रीति
(नल्ल दल्युजिस्टिक् प्रजेटेगनल म्टाइन)
- २ मस्याभासी प्रतिनिगान रीति
(नल्ल दल्युजिस्टिक् रिप्रजण्टेगन म्टाइन)

असत्यभासी भावधर्मी रीति

नाटक का इस रूप म अभिनीत करना कि वह पुराने एक रगमधीय अनुभूति रहे । नाटक की विषय-वस्तु को ऐसे रूप से प्रस्तुत किया जाय कि वह प्रथम वाचिक की अपेक्षा अभिव्यजित सिद्ध हो । यह रग प्रदर्शन स्वाभावत महज और मीधा होता है और इसका प्रत्यक्ष उद्देश्य अभिव्यजना है—प्रकटीकरण । यह इस अर्थ म भावधर्मी है, कि यह नाटक की कथा का, उसकी विषय-वस्तु का, उन्मूलन करता है । यह नहीं कि वह कथा, वह विषय वस्तु, जीवन म कबे अपना प्रतिनिगान पावगी । वस्तुतः यही रग पद्धति संस्कृत रगमच की प्रवृत्ति है । विशेषकर इसकी लोकधर्मी नाट्य परम्परा की प्रवृत्ति, जहाँ दगाव के ममम मच-दृश्य प्रगता जाता है । उसकी मच सामग्री उठा ली जाती है । जहा पा अभिनेता मुद्रा और गति के माध्यम म कभी रथ का सारथी बनता है कभी घोड़े दौड़ाता है । मच पर दा पत्रिकमा बरके जहा वह कागी मे भ्रम मगध पहुँच जाता है और वहाँ स क्षण भर म पाटलिपुत्र या किमी गडक या जगन मे । जहाँ अभिनेता का हाथ ही तलवार है, लफ्फी का छाना मोटा बक्स ही जहाँ राजसिंहासन अथवा पायावीग का आगमन है । मुह पर पुता हुआ रग ही उसकी चित्रवृत्ति का दर्पण है ।

वस्तुतः यह रगमच है स्वभाव और रातिबद्धता का । जहा वास्तविकता की सम्प्रेणीयता के निये प्रतीक का इस्तमान होता है । जहाँ रग को प्रदर्शन तदना म पूरा विद्वान् बरके चलना पड़ता है । यह अथक, अवाय विद्वान् रग की पूरा समवेदना पर चरता है और इसका आचार है इस रगमच की रीतियाँ और परम्परायें जो स्वभावत रग व मस्तार और मीन्यग्राध म समन्वित होती हैं ।

योरूप का मध्ययुगीन रगमच और इतिहासीय रगमच इसी रगमच रीति में माना है। ग्रीक रगमच विशेषकर इसका दुगानत्री प्रकार इस असत्याभासी भावार्थों गीति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। उनका वस्त्र उरर मुखी उनके सम्य उच्च सरडी न तत्वे लग जून, उगी उपस्थापन तत्व के ही लिये सब ध, उभी उनका मार्ग अभिनय रीतिवद्ध था। मार्ग मच दृश्य रीति में बधा था।

प्राधुनिक रगमच में ड्रेस्ट का रगमच, मूलन यही असत्याभासी भावार्थ रगमच है। उगक 'एपिक' रियटर की प्रवधारणा व पीछे रगमच की यह मरा रीति है। यह रीति प्राधुनिक रगमच में काफी साक्षप्रिय है, तथा प्राधुनिक रगमच की यह आज मुख्य प्रवृत्ति जानी जा रही है।

सत्याभासी प्रतिनिधान रीति

यह रगमच प्रकार की रीति में विलुक्त दूसरी सीमा पर। जहा का सत्य उपस्थापन नहीं उल्लि प्रतिनिधान है। और वह भी ऐसा प्रतिनिधान, जहाँ सत्य का आभास लग। जहाँ दृक् के विद्वान का भरोसा न करके उमक विमान तब का महारा लिया जाय। उस जहाँ चुनौती दी जाय, कि मच पर जा कुछ हा रहा है व जग जीवन में हो रहा है। जितना आशय जीवन में है तनिक स्थितिया में उमी के भीतर उगी यथापवाय म मच निमित होता है अभिनता उगी तरह अभिनय करते ह, मच पर बहा यथापमय व्यवहार होता है। वस्तुत यह रगमच यथापवाय और 'प्रवृत्तिवाद' का रगमच है जिसमें प्रमुख नाट्यकार हुए हैं इमन 'ग' चवव, 'स्टि-बय,' 'मावर मिलर प्रा'। और 'म रगमच रीति के प्रमुख निर्देशक और प्रस्तुतकर्ता हैं 'स्टेन्सावेस्की और इतिया बजान।

रगमच की प्रक्रिया

नाटक रगमचन मच रग गित्य साज सज्जा इन सारे तत्वों के मध्य में दो मूल तत्व हैं जिनका बिना रगमच की कोई कल्पना नहीं की जा सकती। वे मूल तत्व हैं—अभिनता और नाक।

मानव मस्तिष्क न इतिहास में एक चरण बंधा, जब नाक (गठ धपवा

कृति) नहीं लिखा गया था, यहाँ तब कि जय गद भी मही था पर रगमच तब भी था। पे-टोमाइम अभिनटन के रूप में। तब न रगभवन था तमच न 'रगगिला'। पर था रगमच का मूल्य मत्स्य, अभिनता और दगाक—एक खेलने वाला, दूसरा उसे देखने वाला। वस्तुतः बना सम्पूर्ण का ही मूल है सम्प्रेषणीयता। दूसरे गान में कोई भी कला कृति, यत्ति द्वारा किसी भी रूप और माध्यम से एक समूह के प्रति वचन है प्रतिनिवन्त।

यह वचन का प्रकार में समव है। पहला, कहकर दूसरा कहे—कृत् रचना करके। जिसे कोई कृति कहें हम। रगमच में यह रचना मनुष्य कबल काय द्वारा करता है, जिसमें उसकी बोली है, गति है व्यवहार है। और यह जाली भाषा, गति, काय और व्यवहार में साजन हैं उमी एक माध्यम, उमी एक मत्स्य के, जिसे वह समाज का सम्प्रेषित करना चाहता है। इस तरह रगमच का मूल्य मत्स्य कर चुकने में नहीं, बल्कि उसका काय व दग म है और उसमें सम्प्रेषित जान है। नाटक निश्चय ही एक किया हुआ काय है मकना है, किन्तु रगमच काय का करना है। यह एक प्रत्यक्ष प्रक्रिया है। माक्षान कम और काय—गोना का मत्स्यविन्दु। उदाहरण के लिए गूद्रक का 'मुच्छकटिकम्' अपने उस युग के लिए जो कुछ था वह आज हमारे उस युग के लिए हमारे मत्स्य में विलकुल अपना है—विलकुल अपना और नया। उसमें व्याप्त गूद्रक के विचार उसके आदर्श, उसका कवित्व यह सब उस नाटक का माहित्य पक्ष था—रगमच की दृष्टि से एक गौण पक्ष। मुख्य पक्ष वह था जिसमें अभिनतामा को इन खेलने के लिए अनुप्रेरित किया, वह तत्त्व, जिसे देखने वाले के लिए प्रक्षय बग एकत्र हुए और जो प्रभाव उनके ऊपर पड़ा—यही रगमच था। गूद्रक का, मुच्छकटिकम् का।

किसी कृतित्व द्वारा समाज का सम्प्रेषित करना यह क्षम है मजनात्मक बना का। किन्तु आगे प्रत्यक्ष काय के द्वारा नाटक का काय करना दिखाना यह क्षम है प्रत्यक्षनील बना था। स्वभावतः मजनात्मक कला में कलाकार और समाज का प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं होता, जब कि दूसरी बना में यही प्रत्यक्ष सम्पर्क उगता गवस रहा आदर्श है। और यही प्रत्यक्ष अनुभूति का ज म बना है। तथा उमी अनुभूति में वही सम्प्रेषित हो जाना है जिसके उद्देश्य में अभिनता नाटक ने सामन हाजिर हुआ था।

अतएव रगमच एक नूतन बड़ी बना है। बनी बना इसी लिए कि इसकी प्रक्रिया प्रत्यक्ष और सम्पूर्ण जाना है। और मूलतः उसका माध्यम वही अभिनेता होता है।

परन्तु यह है, दग अभिनता का वह मूल साधन क्या है जिसमें वह दगा को अपनी बात का बोध कराता है। अभिनता का यन्त्रित साधन है उसकी

आवाज, मुद्रा, उसका मुखौटा, उगना वस्त्र और उगना उपकरण—वाद्ययंत्र आदि। ये साधन अभिनेता के मूत्र और मुख्य साधन हैं। उसका अर्थ साधन है—वह ध्यान, वह मंत्र जहाँ वह अभिनय करता है, वह पृष्ठभूमि, इस सज्जा त्रिनस वह अपने मंदम व निर्माण में सहायता प्राप्त करता है।

अभिनता का यही निज का साधन ही वह मूत्र शक्ति है, जहाँ से रगमच अपना जन्म पाता है। यह एक भिन्न बात है कि किसी जनसमूह में सहमा एक व्यक्ति खड़ा होकर जब उस पूरे समूह का सम्बोधित करता है तब स्वभावतः उस अपनी वाली स्वर आवाज बन्ननी पड़ता है। क्योंकि जिना किमा विचित्रता व उसकी ओर लोगों का ध्यान बन जायगा? इस विचित्रता के लिए ही वस्त्र और मुखौटा ही सबसे अधिक सरल और प्रभावशाली साधन रहा है। अभिनता में यह तत्त्व आते ही रगमच व स्वरूप का निर्माण शुरू हो जाता है। अतः अभिनेता प्रभाव और सम्प्रेषणीयता के लिये रगमच निरूपण का स्वयं एक साधन बनता है। यही कारण है कि सत्तार भर में रगमच इतिहास का पहला चरण मुखौटा-काल रहा है। मुखौटा पहनकर ही व्यक्ति पहली बार मनुष्य से अभिनेता बना और उसका इसी मुखौट में ही आदिम रगमच का स्वरूप प्रकट हुआ।

इस मुखौटे में वह विशेष कार्य क्या किया? मुखौट में उस पर चित्र मनुष्य के स्थान पर एक अपरिचित देवता अधमानुष राक्षस और जानवर को उस समूह के सामने ला खड़ा किया। अतः उस अभिनता के व्यक्तित्व में अपार अथबोध पैदा कर दिया।

अभिनता के इसी साधन आधार पर वस्तुतः रगमच की धुरी धूमती है। जहाँ साधन आधार में परिवर्तन हुआ वहाँ से निश्चय ही रगमच का नया युग शुरू हुआ। अभिनता का मूल चलता है इस मूल के रगमच में ज्यादा परिवर्तन होना गया, टीन उमी व अनुरूप रगमच का सारा स्वरूप बदलता गया। साधारण स्त्रोत्र में समकालीन तब और वहाँ से पूरा नियोजित और पूर्ण समस्कृत प्रयोग तक—एक अवधि रगमच इतिहास सत्तार व सामन प्रकट पाता रहा।

रगमच व इस त्रिक विभाग में यह कहना कठिन है कि उस मूल में उत्तरोत्तर अधिकविकसित और प्रभाव आता गया या नहीं। हाँ बवल यह निश्चय ही कहा जा सकता है कि वह मूल त्रिमय अपने युग व माता और जन व मोक्षदायक व अनुरूप स्वभावन चलता चला गया।

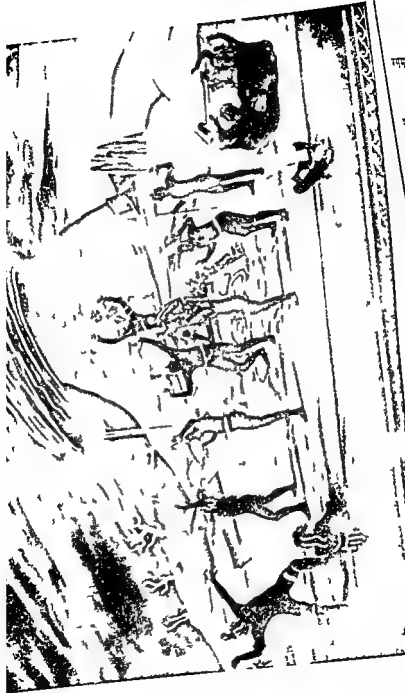


मुन्नीटाचारा मनुष्य





नौवचमी रंग परम्परा



रगमच के सात चरण

रिचर साउथन नथपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द सविन एजज आफ द थियटर' में गुरु में आज तक ममार भर के रगमच विकास को ध्यान में रखते हुए हमें सात चरणों में अध्ययन करने ज़रूरी है।

पहला चरण है—वस्त्र विभूषण मुखौटाचारी अभिनताया का। हम चरण में रगमच के साथ तत्त्व उसका सहायक न हो सके थे।

दूसरे चरण में यही भुगौलाचारी अभिनता अर्थात् मन्त्रा और वग में महोत्सव के रूप में आता है। मुक्त आवाजी मंच, चारों ओर दगकों में घिरे हुए। यात्रा का म धार्मिकता के तत्वा के साथ पूजा के अवसरों पर। तृतीया चरण में कुछ निमित्त नाट्य भाग का भी समावेश समझें।

तीसरे चरण में रगमच अपने अर्थात् तत्वा तथा मायना के साथ उजागर हुआ। धर्म के स्थान पर धर्मनिरपेक्ष मंच धर्मनिरपेक्ष नाटक। अभिनताया का मन्त्रा में कमी। विचित्रता के स्थान पर सहजता। उमर और उल्लापन के स्थान पर व्यावसायिकता। मुक्त आवाज के नीचे में मंच का भवन के भीतर प्रवेश। तकनीकी नियमों में मन का बंधन। विशेष आकृति और उसकी मन्त्रा में कमी।

चौथे चरण में विविध मंच का निर्माण। मंच पर अनेक भक्ता और दृष्टा वाल नाटका का उद्भव। कथा-नत्व और चित्र चित्रण पर आधारित। पात्रों के आन्तरिक मध्य और दृष्ट भाव पर विशेष बल।

पाँचवें चरण में रगमच का पूर्णरूप में चित्रवत् स्थिति में प्रतिष्ठित होता। विशेष रगमच का निर्माण। रगमच में दृष्ट सज्जा प्रकाश-व्यवस्था का उद्भव। नाटक के गुरु समस्या का समुचित सम्प्रेषणीयता और उसके प्रभाव पर आधारित।

छठे चरण में मत्स्याभाम पर आधारित। जीवन के यथाय बाध का रगमच का आधार बनाना।

और रगमच का सातवाँ चरण है समत्स्याभाम (एटी एल्यूजन) का। तटस्थता का अनियमन का।

पहला भाग
संस्कृत-रंगमंच
कृतित्व पक्ष रूपक (नाटक)

कला अथवा साहित्य के मूल रूप और उनमें वास्तविक मिश्रता का समझना, कला और साहित्य का समझना है ।

पर नाटक ?

जो न पूरुष साहित्य की परिधि में आता है न पूरुष कला का ।

नाटक और वाक्य साहित्य के मूलभूत हैं पर 'पटाभास' भावाभिनय का नाटक का प्रारम्भिक और शक्तिशाली रूप है, उसमें नाटक और वाक्य तो हाथ ही नहीं—न कथन का उच्चारण ही होता है ।

समय के साथ समस्त महान् और अछल नाटक कथन के लिए लिखे गए थे । उनकी रचना में अनुष्ठान के रूप में दृढ़ थी । यह रूप में वे पड़े भी जायेंगे, भाषा की रचना भी उन्हें अनुमान में ही ।

ग्रीक रंगमंच के माफोक्लीड' के उत्कृष्ट नाटक आदिपम रूप की रचना प्राचीन यूनान के देवता डायोनिमस के पूजन-समारोह के लिए हुई थी, जो समय के अनुसार तथा ऐदिका के नृत्य-गानों का नया जीवन प्रदान करते थे । 'शकमपिय' का हमने उक्त समय 'आराना' के प्रति धार्मिक अभिनेता अनुष्ठान के नियमों का पालन किया था । संभवतः कालिदास का अभिज्ञान साकुन्तलम्, मालवीयाचार्य 'मानविकानि मित्र और नाटक' के मृच्छकटिकम् की रचना प्रमत्त नृत्यानीन कमनोत्सव विजय-यव पुत्रात्मक अथवा कौमुदी महात्म्य और भद्रनाथ के लिए हुई थी । मन्त्र रंगमंच के इन नाटकों के विषय में यद्यपि बाह्य में ऐसा कोई प्रमाण अब तक नहीं मिला है, किन्तु इन नाटकों में परिचायित रंगमंच उनकी रचना शैली और इनकी आंतरिक भाव भाव जो विपुल आनन्द, मधुर मिलन और माणविक मूल्यों को अभिनय में समाहित किया हुआ है—यह अनुमान ही प्रकट होता है ।

संस्कृत नाटक (रूपकत्व)

हिन्दू अथवा संस्कृत रंगमंच में नाटक का मूल रूपक है । धनत्रय ने इस रूपक का 'नाट्य' का पर्याय माना है । यह 'नाट्य' का स्पष्ट वर्णन है ।

रंगमंचकार न 'रंग' और 'रूप' को बड़े ही शास्त्रीय ढंग में उमके यात्त और आनन्दिक रंगमंच को बनाने हुए प्रवृत्त किया है ।^१

अवस्थानुक्रमिनाट्यम्

अवस्था व अनुकरण को ही नाट्य कहत है । जहाँ काव्य में निबद्ध या वर्णित धीरादात, योगेद्धत, धीरवर्तिन, धीरप्रताप प्रवृत्ति के नायक (तथा तत्त प्रवृत्तिगत नायिकाओं तथा अथ पात्रा) का आंगिक वाचिक आह्वय तथा सात्विक दम चार ढंग के अभिनय के द्वारा अवस्थानुकरण किया जाता है वह नाट्य है । अवस्थानुकरण में नाट्य है कि चाल गान, वस्त्र भूषा, आवाज प्रमाण आदि व द्वारा पात्रा की प्रत्यक्ष अवस्था का अनुकरण इन ढंग में किया गया कि नृ म नाट्य र पात्रा की 'तादात्म्यगति' हो जाय । जैम नृ दुष्यत की प्रत्यक्ष प्रवृत्ति की एभी अनुकृति करे कि सामाजिक उसे दुष्यत ही समझ । नाट्य अनुष्ठान व समय दुष्यत और नृ का भेद न रहे, उनमें परस्पर समन्वयगति' ही प्राप ।

रूप दृश्यतयाच्यते'

'तद्वय नाट्य दृश्यमानयमा रूपमित्यच्युत नीलादिरूपवत ।'

यही नाट्य रूप भी कहलाता है । नाट्य केवल श्रव्य न होकर मंच पर अभिनीत भी जाता है अत यह दृश्य है । जब हम नीले-पीले आदि रंग को देखते हैं तथा हमारे चक्षुर्गिद्वय र विषय का रूप कहते हैं, उभी तब हम स्वप्राप्त ज्ञान के कारण नाट्य रूप भी कहलाता है ।

'रूपव' न समारापात

नट रामाद्यवस्थारोपण यत्तमानत्वादूपव मुखचन्द्रादिवत

१ धनञ्जय निरचित 'नृशास्त्र' प्रकाश ८, भाग्यार २१० ओत्तरातर व्यास ।
वीज्या विष भान नाशी ।

एवैकस्मिन्नर्थे प्रवर्तमानस्य गद्यत्रयस्य 'इन्द्र पुरन्दर गज'
इतिवत्प्रवृत्तिनिमित्तभेदे दर्शित ।

'वही नाट्य रूप रूपक' भी कहलता है, क्योंकि उसमें आगप पाया जाता है । जम रूपक अत्रकार म हम दखने हैं कि मुख ग चन्द्रमा का आगप कर लिया जाता है—मुखचन्द्र (मुखरूपी चन्द्रमा), वसन्त नाट्य म नट पर रामानि पादा की अन्वया का आगप किया जाता है अन्त इस रूपक भी कहते हैं । किस तरह इन्द्र, पुरन्दर, गज ताना नामा म पुकारते हैं वम ही एक ही अर्थ म 'नाट्य,' 'रूप तथा रूपक' तीना शब्दा का प्रयोग होता है । 'कथावस्तु पात्र और रस के आधार पर रूपक के दस भेद हैं

नाटक, प्रकरण, भाग, प्रहसन, हिम बीम समवसार, व्यायाग अत्र और इन्द्रमृग ।

नाटक रूपका म म सबप्रथम और अन्त्य है । रूपक क प्राय ममम्ल लक्षण और मिद्वान व्यक्तीकरण नाटक पर ही चरितार्थ किया गया है । मम भी आग नाटक रूपक का प्रतिनिधिस्वरूप है, क्योंकि प्रकरण, प्रहसन आदि रूपक क अर्थ प्रकारा के लक्षण नाटक क ही आधार पर निरधारित किया गया है । हमक अनिर्दिष्ट रूपक क प्रागभूत तत्त्व मम की पूर्ण प्रविष्टा नाटक म ही पायी जाती है ।

रूपका म नाटक की क्या अन्तनी विराटता आन सबप्रमुखता स्वीकार की गयी है ? 'रूपरूपक' म रूपक तीन कारण बताय गया हैं ।

पहल ता नाटक ही अर्थ रूपकभेदा की प्रवृत्ति का मूल है उमा म वस्तु नता, रम के परिवर्तन वर्तन के अर्थ रूपका की सृष्टि ना जानी है । दूसर नाटक म रम का परिपाक पूर्णरूप म तथा अन्त रूप के पाया जाता है । उसम शृंगार या वीर का भी रम अगी रम हा सकता है तथा अर्थ मभी रम अर्थ रूप म मन्निविष्ट किया जा मरते हैं । तीसर वस्तु क नता (पात्र) क ममम्ल गाम्प्राय लक्षण और रम की मभी मयाना इसी नाटक म पायी जाती है ।

रूपरूपककार धनत्रय न नाटक की विशेषताका का विवरणण ३ दृष्टिया म किया है—प्रागम्भिक विज्ञान और वृत्ति कथावस्तु नायक रम वय दृश्य और अत्र ।

नाटक का प्रागम्भिक रम विधान 'दृश्यरूप' म बर विज्ञान और रगनिष्ठ रूप म किया गया है । जब मूत्रपात्र पूवरण का विज्ञान वर्तन क बाद रसमय म चला जाता है, ता उसी की तरफ (की वाभूषा वाता) दूसरा नट मच पर प्रवेश कर काव्य का प्रस्थापना कर । यदि वस्तु देवता सबधी (निय) हा ता वर न्विय रूप म मन पर प्रवेश कर । यदि वह मानव सबधी हा ता वह नर मत्य रूप म आन ।

मंच पर आकर काव्याय की स्थापना करने समय वह नाटक की कथा वस्तु, उसकी 'बीज' नामक अथवा प्रवृत्ति मुख्य (स्नेह व द्वाङ्ग) या समुदाय पात्र की सूचना दे।

स्थापक नट सर्वप्रथम काव्य व श्रेय की सूचना देने मान स्थापना के द्वारा रंगमंच भाषाजिका का सम्बन्ध, किसी ऋतु हो वर्णित करते समय भारतीय वृत्ति का प्रयोग करे। नट के द्वारा प्रयुक्त मसृज्य भाषा वाला काव्या पात्र भारतीय वृत्ति कहलाता है। हमारे प्रराचना, बीबी प्रहसन तथा आमुक्त व चार के पात्र जाते हैं।

नाटक के तत्त्व

नाटक के कवन तीन भागोंमें भूत मत्व है

कथावस्तु (इतिवृत्त)

नता (पात्र नायक भाषि)

रस

दण्डप्रकार न नाटक की रचना विधि तथा उसके अनुष्ठान के प्रारम्भिक विधान को उत्पन्न हुए कहा है कि "मूत्रधार" इस प्रकार प्ररोचना की थी, प्रहसन और आमुक्त भाषि किसीके द्वारा काव्याय अथवा नाटकीय पात्र की सूचना दे। उसका आक्षेप तथा परिचय के रूप पर प्रस्तावना के अनन्तर वह मंच में निष्प्राप्त हो जाय तथा अन्तर्गत कथावस्तु को प्रपञ्चित करे।

अतः नाटक के ही नायक तथा तत्सम्बन्धी वस्तु का ही मंच पर प्रस्तुत हुए दण्डप्रकार कहता है 'नाटक' का नायक या तो प्रसिद्ध कृत में उत्पन्न राजर्षि भूपति होता है जो उत्कृष्ट गुणा से युक्त, धीरोदात्त प्रवृत्ति का तथा प्रतापमोल होता है यह मंच तथा क्रीडा की कामना किया करता है उसमाह से मुक्त होता है तथा नीचा वर्ण का रक्षक होता है अथवा नाट्य का नायक कोई दिव्य शैवता हो सकता है, जो इन सभी विषयनामा में युक्त होता है। उस नायक के विषय में इतिहास-पुराणादि में प्रसिद्ध कथावस्तु का ही नाटक की आधिकारिक वस्तु रखना चाहिये। जिन इतिहास अमिद (प्रख्यात) वृत्त में इस तरह का, इन गुणा व विषयनामा में सम्पन्न नायक हो उही वृत्त नाटक में उपयुक्त होता है।

नाट्यकार तम कृतित्व म अपनी कल्पनानुसार उसकी मूलगत विशेषताओं का नही सिगाड सकता ।

नाटक की समस्त कथावस्तु की कुछ मूल स्थितियाँ होती हैं । उमे

- पाँच अयप्रकृतियाँ
- पाँच अवस्थायाँ
- पाँच मरियाँ म विभक्त किया जाता है ।

अयप्रकृतियाँ

अयप्रकृतियाँ कथानक अथवा कृतित्व क निर्माण-तत्व हैं । उही की विभिन्न स्थितियाँ म नाटक का कथानक सुगठित रूप म निर्मित करना है । य म पाँच होती हैं बीज, मिट्टी, पताका, प्रकरी और काय ।

बीज, धूम्र क बीज की तरह वह तत्व है, जा घटना और काय व्यापार द्वारा कृतित्व म समा अकृति लेकर नायक के कम और कम की ओर जाता है ।

बिन्दु वह स्थिति है, जहाँ बीज पानी म गिर डूँ गल की बूद की तरह पतता है और इस गता म कृतित्व का अकृति बीज फैलकर व्यक्त बन जाता है ।

पताका क अलग-गल पताका नामक प्रासंगिक इतिवत्त आता है । पताका अधिकांश कथावस्तु क साथ नाटक म अगल चलती रहती है मानुष्य होती है, उमे पताका कहते हैं ।

प्रकरी म दूसरी प्रासंगिक वस्तु होती है । यह मूल कथा अथवा आधिकारिक कथावस्तु क साथ कुछ ही दूर तक चलकर सहसा ख जाती है ।

काय जिस उद्देश्य, पत्र प्राप्ति के लिए नायक के कम का प्रारम्भ हुआ था, उसकी प्राप्ति को कहते हैं ।

अवस्थाएँ

प्रवस्थाएँ नाटकीय इतिवत्त की गति का व्यक्त करती हैं । मानव जीवन कभी एक सीधी गति अथवा गता म चलकर अपने अंत तक नही पहुँचता, वरन् विभिन्न

मघर्षों तथा जीवन व माराह और अवराह व फलस्वरूप टूटी मनी गति से प्रपन उद्देश्य तक पहुँचना है। जीवन में अनक मघर्ष है, दुःख है पर भारतीय जीवन अथवा मन इस मध्य में पूर्ण विश्वास करके चलता है कि उस जीवन के दुःख, विराधाभामा और, विघ्ना मघर्षों पर अन्तर्वागत्वा अवश्य ही विजय प्राप्त होगी। इस तरह भारतीय जीवन 'कलागम' में पूर्ण विश्वास करता है। इस जीवन के चार फल हैं, धर्म अथवा काम और मान। चतुर्वर्ग की यही फलप्राप्ति 'अवस्थाप्रा' व अन्तर्गत अन्तिम स्थिति में 'कलागम' की सेवा प्राप्त करती है। इस स्तर पर हम भारतीयों की यात्राया पाश्चात्या की तरह निराशावाणी नहीं रही। इसी जीवनगत दृष्टिकोण के ही कारण यहाँ के नाटक के नायक और उनकी चरम सीमा(यदि कहें) में जीवन फल की प्राप्ति आवश्यक है। यही कारण है कि पश्चिम के डामा व विचरीन यहाँ के नाटक का पूरी प्रकृति और उनका एकान्त स्वर सदा मागमित्र और सुखान्त रहा है। किन्तु हमें यह नाटक व इस प्रकार सुखान्तकी होने में इस पश्चिमकी 'कामडीज' व प्रथम नहीं लिया जा सकता। भारत के नाटक और पश्चिम की 'कामडीज' इन जगहों में भी जमीन घासमान का फल है। कामडीज काटि में ममयन हमारे यहाँ के प्रहसन और भाग्य प्राप्ति।

अवस्थाय पाँच होती हैं आरम्भ प्रपन प्राप्तिप्राप्त नियन्त्राणि और फलागम। ये विभिन्न अवस्थाय भूतत काय की अवस्थाएँ हैं।

आरम्भ अवस्था व अन्तर्गत नायक व किसी वस्तु अथवा मध्य की प्राप्ति की इच्छा होती है और वह नाटकीय अवस्था में महत्ता नाटक में प्रकाशित हो जाता है।

प्रयत्न काय की इस अवस्था में नायक उस वस्तु अथवा मध्य की प्राप्ति के नियम प्रयत्नशील होता है।

प्राप्तिप्राप्त में विघ्नादि विरोधा का विचारन व बाध नायक का तन्निवर्तक लक्ष्य प्राप्ति की सम्भावना हो जाती है।

नियन्त्राणि में उसे उद्देश्य प्राप्ति का पूरा विश्वास हो जाता है।

फलागम में उस धर्म अथवा काम और मान में म प्रपना अभीष्ट फल प्राप्त हो जाता है।

मघिर्षा

अथ प्रकृति तथा अवस्था व अनिश्चित नाटक की कथावस्तु में पाँच मघिर्षा

भी हानी है। इन्हें मयियाँ इमनिय कहते हैं कि ये पाँच अयप्रकृतियाँ तथा पाच अवस्थायाँ के योग से बनती हैं। मयियाँ के नाम हैं, भुव, प्रतिभुव, गम, विमग और निवहण। ये मयियाँ वस्तुन कथावस्तु के स्थूल खड कह जा सकते हैं, स्वभावन इनमें क्रमशः नाटक के भी स्थूल खड हो जाते हैं। नाटक में मयियाँ का अभिप्राय नाटक की ममस्त अथ रागि का परम्पर सम्बद्ध बनाना है। बीज और आरम्भ को मिलाकर मुख्यमधि होती है। त्रिन्दु और प्रपल्ल का मिलाकर प्रतिभुव सधि। गमसधि में पताका और प्राप्त्यागा होती है। विमग में प्रवरी और नियन्त्रिणी होती है। और निवहण में काय और पन्नागम सधि होती है।

नाटक में कथावस्तु के इनने शास्त्रीय और मूर्ख मगठन का एकमात्र उद्देश्य था नाटक की आत्मा रस की निष्पत्ति और उसका बाध। नाटक जब रंगमंच पर प्रस्तुत होता है तो उसके रसास्वादन में वही कथानक की जटिलता, भ्रष्टता और यहाँ तक कि अश्रुत्यागिनी और जिनामा-भूषण कथा की स्थिति दर्शक के रस-निष्पत्तिमय मन का वही धक्का न द, इसी लिए नाटक की कथावस्तु, नायक पात्र सभी इतिहास-पुराणादि के प्रख्यात कथा-खंडों से चिनि जाते हैं। इसके अतिरिक्त नाटक की रचना में, उसका महत्त्वपूर्ण प्रकृति में दृश्य कथा-भूत के साथ मुख्यभाग द्वारा (रस निष्पत्ति और उसके मिदालन के अनुष्ण) व्यवहृत होते हैं। रस मुख्यभाग का प्रयोपनैपक कहते हैं, क्योंकि ये मुख्य अर्थ का आसिप्त करते हैं। ये पाँच प्रकार के होते हैं

विष्कम्भक

प्रवगाव

चूनिता

अवास्थ

अवावतार।

नाटक में विष्कम्भक तथा प्रवगाव का विशेष महत्त्व है और इन्हीं का प्रमाण उमम प्राय देखा जाता है।

पात्र अथवा नेता

नाटक का दूसरा सत्त्व अथवा भेदक अर्थ होता है। पात्र के त्रिच नताँ "नाटक शास्त्र के मिदालन के अधिक समीप है। नेता नाटक के साथ नायक का मारा परिवार आ जाता है। नाटक का नायक वही बन सकता है जिसमें नियम, शक्ति तथा अर्थ भूषण विद्यमान है। नायक को नाटक शास्त्र में चार

प्रकार का माता गया है। यह प्रकार भेद नायक की प्रकृति के आधार पर किया गया है। धैर्य गुण सज प्रकार के नायक का मूलधार तत्त्व है। 'धीरत्व' के अतिरिक्त इनमें अपना अपनी प्रकृतिगत विशेषताएँ पायी जाती हैं। ये नायक चार प्रकार के हैं

धीर सलिल
धीर प्रशान्त
धीरोन्मत्त
धीरोद्धत ।

नाटक का नायक मूलतः धीरोदात्त होगा जो अत्यंत गभीर, क्षमाशील अविचर्यमान स्थिर निगूढ़ महकारवाला तथा दृढव्रत होता है।

नाटक में नायक का ही भूमि नायिका का भी उतना ही महत्त्व है।

नाटक में नायिका की स्थिति सर्वाच्च है स्वकीया, भुजा और स्वाधीन पति का अमश सम्बन्ध अवस्था और दगा व स्तर से ये तीनों स्वल्प नाटक की नायिका के लिये अपेक्षित है।

नायक नायिका तथा नाटक के अन्य पात्र, जैसे उपनायक, विदूषक पीठम और प्रतिनायक आदि के विषय में जो इतना ग्रास्त्रीय और सद्धान्तिक आग्रह है उससे पीछे उसी रस रस्य की ही बात सबका सिद्ध है।

रस

रस नाटक की धामा और उसकी मंच रचना का चरम उद्देश्य है। रस क्या है, उसकी रसनिष्पत्ति पर कितने विविध मत और विभिन्न रस सिद्धान्त ससृष्ट रगमच में हैं—इससे ससृष्ट का सारा काव्य-शास्त्र भरा पड़ा है।

भारतीय नाटक के सम्बन्ध में यहाँ केवल इतना ही संकेत कर देना पर्याप्त होगा कि नाटक के दर्शन तथा उसमें काव्य-श्रवण से जिस आनन्द का अनुभव हमें होता है वही आनन्द रस कहलाता है। उसकी निष्पत्ति विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी के समाय से होती है। भरत मुनि ने 'रस' की चरणा के साधना के विषय में नाट्य शास्त्र में यही मत व्यक्त किया है— विभावानुभाव व्यभिचारिसमायाद्रस निष्पत्ति । नाटक में मुख्यतया वीर या शृंगार की अंगीरूप में तथा अन्य रसों की अंग के रूप में प्रतिष्ठा होनी चाहिये। ससृष्ट नाट्य का चरम उद्देश्य रस है। इसी को लक्ष्य में रखकर ससृष्ट रगमच की सारी रूपरेखा और रस गित्य निमित्त हुआ है। 'रस' की महत्ता और अर्थ

गौरव इतना है कि इसमें घम, विद्वान्स और पुराण तब का मिलाया गया है। हर रस का स्थायी भाव, उसके मचारी, उसके दवना, उसके रग निश्चित हैं। और रस आधार मे ही सम्भृत नाटक, उसकी वृत्ति तथा उसकी प्रग्नान-मद्वति, इन सबका निश्चय होना है।

रस	स्थायीभाव	रग (वर्ण)	देवता
शृंगार	रति	दयाम	विष्णु
हास्य	हास्य	उज्ज्वल	गम
रोद्र	क्रोध	नान	रुद्र
वीर	उत्साह	लान	रुद्र (गक)
वदण	गोत्र	भूरा	वर्ण
भयानक	भय	काना	यम
रीभत्स	जुगुप्सा	नीना	महाकाल
अस्मृत	विस्मय	पीना	ब्रह्मा

इसमे सम्भृति 'वृत्ति' वह मुख्य तत्त्व है जिसमे नान्य-मस्तन और प्रग्नान-विधि भीधे सम्भृतिन हैं। य वृत्तियाँ चार हैं—कौणिकी, सत्यवनी, आरभणी और भागती।

कौणिकी, सत्यवनी और आरभणी—य तीना वृत्तियाँ शृंगार, वीर और रोद्र रस मे आती हैं। इन तीना का सम्भृति नाटक और रग मे घटना और स्थिति निर्माण मे भी है। भारती वृत्ति शेष सब रसा मे है तथा इसका सबघ नाटक और रग मे कथोपकथन तथा भाषा प्रयोग मे है।

उदाहरण के लिए प्रेमिका द्वारा प्रेमी के बनाए हुए चित्र का प्रकट होना और महमा उसके भेद का खुलना, यह घटना और स्थिति 'कौणिकी' है। जाली प्रमाण से किसी को धोखा देना, किसीके प्रति विश्वासघात करना यह 'सत्यवनी' है—गभीर और गहन स्थिति भयानक युद्ध दुष्टना यह सब 'आरभणी' मे आता है।

नाटक मे रग-वर्जित सय

नाटक का प्राण रग है और यहा रस निष्पत्ति उसके समस्त रग निष्पत्ति को परिचायित करती है। इसने अनुसार नाटक के व्यावहारिक रूपीठ पर कुछ धानो का प्रग्नान वर्जित माना जाता है। इनके पीछे भी यह भाव है कि दगाव-वग की ओर मे इन सत्या के कारण उसकी रसचवणा-शक्ति मे स्वभावतः

किसा प्रकार की बाधा न पहुँचे। इसब लिए मूलतः विभिन्नलिखित सत्य मंच अनुष्ठान में वर्जित है।

(घ) वर्जित द्रव्य दूर का मांस, बब युद्ध, राज्य और दसविप्लव, घेरा डाँतना, भोजन स्नान, सुरत, अनुनेपन, और वस्त्र ग्रहण आदि।

(ङ) वर्जित कर्म अधिकारी नायक का बब ता मंच पर किसी भी प्रकार नहीं दिखाना चाहिये।

नाटक का स्वरूप और प्रकृति

नाटक अपने गारारिक विस्तार में पाँच अंक से दस अंक तक का हो सकता है। पाँच अंको का नाटक प्रायः छोटा नाटक माना जाता है। कारण, नाटक का मूलरूप में जैसे वही महाकाव्यत्व का भाव बैठा हुआ है। नायक द्वारा चारो पक्षों की प्राप्ति, उसके चरित्र और कम रेखाओं में इतना धैर्य, इतना आदर्श भाव इतनी उन्नत चेतना और गौरव—निश्चय ही इस सबके पीछे यह लक्ष्य था कि नाटक ऐसा हृदयमय महाकाव्य है जिससे जाति और राष्ट्र का मर्यादा और आदर्श प्राप्त होने हैं। नाटक का विषय में, उसकी रचना और उपस्थापना में इतने निश्चित सिद्धान्त और नियम बने हैं—सम्भवतः उसने पीछे नाटक की यही अनुल मर्यादाएँ काय कर रही थी।

एक अंक में एक ही दिन एक ही काय प्रयोजन की बात प्रकट होती है। प्रत्येक अंक का नायक से किसी न किसी भाँति सम्बन्धित होना निश्चित है। नायक का अतिरिक्त एक अंक में दो चार पात्र और भी हो सकते हैं। किन्तु इन पात्रों का अंक के अन्त में मंच से प्रस्थान होना आवश्यक है। 'दण्डपत्र' के अनुसार नाटक का रूप विधान के इन मूल लक्षणों का अतिरिक्त प्रत्येक अंक में पताका-स्थानका का समावेश हो तथा इसमें अवस्था और अथप्रवृत्ति के मूलभूत सिद्धान्तों से सखि नियम का पालन हो।

नाट्यशास्त्र में 'नाटक' की मूल परिभाषा निम्न रूप में इस प्रकार है

प्रत्येतवस्तुविषये प्रत्यतोदात्त नायक चतः।

राजर्षिवद्वचरितं तथैव दिव्याधयोपेतम् ॥१०॥

नाना विभूतिसयुक्तमृद्धिविस्तारविभिगुणञ्चव।

अवशवेणकाव्यं भवति हि तन्नाटकं नाम ॥११॥

नृपतीना यच्चरित नानारसभावसम्भूत बहुधा ।

सुखदुःखोत्पत्तिकृत भवति तन्नाटकं नाम ॥१२॥ (अध्याय १८)

अर्थात् जिसका इतिवृत्त प्रख्यात और नायक राजवंश का पुरुष हो, जिसे दियाश्रय प्राप्त हो, जो नाना विभूति एवं विलासादि गुणों से समुक्त हो, जिसमें उपयुक्त सख्या वाले अंक और प्रवचक हों, जिस काय में राजाओं के चरित्र, उनके क्रिया-कलाप, उनके सुख-दुःख से अनेक भावा और रसा का आविर्भाव हो, वह नाटक कहलाता है ।

धर्मिताए

संस्कृत अथवा हिन्दू रंगमंच में दो प्रकार की निश्चित नान्य धर्मिताएँ थीं

१ नाट्य धर्मों

२ लोक धर्मों

संस्कृत नाटक के प्रथम म गत पृष्ठा में इतिवृत्त, नायक और रस के स्तर से जितनी चर्चा हुई है और उसके अ त्तत नाट्य सम्प्रदायी जितने नियमों और सिद्धांतों का उल्लेख हुआ है वे सब नाट्य धर्मों के उदाहरण हैं ।

भारत का सारा नाट्य शास्त्र नाट्यधर्मों रुढ़ियों का ही विंगल ग्रंथ है । परंतु निष्पक्ष बात नाट्य शास्त्र के लिये यह है कि उसके शास्त्रकार ने उस विंगल ग्रंथ के धर्म वन कतिपय उल्लेखों और प्रसंगा के माध्यम से इस बात को बर्नी नहीं भुलाया है कि 'नाट्य' की वास्तविक प्रेरणा भूमि लोक-जीवन है, और उसकी वास्तविक बसोटी भी लावचित्त है । लोक में अमस्य प्रकृतियाँ हैं, अनपेक्ष नाट्य प्रयोग के नियम लोक ही प्रमाण हैं क्योंकि इस प्रकार साधारण जनता के आचरण में ही नाटक की प्रतिष्ठा है । यह 'लोकधर्मप्रवृत्ति' ही लोक-नाटक का नियामक है ।

नाट्यशास्त्र के इक्कीसवें अध्याय में शास्त्रकार ने दोनों नाट्यधर्मिताओं के विषय में स्पष्ट कहा है

लोकधर्मो भवेत्स्वया नाट्यधर्मो तथापरा ।

स्वभावो लोकधर्मो तु विभावो नाट्यमेव हि ॥२०३॥

यस्येव म, जो स्वाभाविक है अर्थात् जो (मानव) स्वभाव है वह लोक धर्मों है और जो विभाव है (बना द्वारा जो कृत्रिम है) वह नाट्य धर्मों है । नाट्य धर्मों को साधारणतः नट्य नाटक भी कहते हैं । प्राचीन भारत में यही वह

विशेष नाट्य शली थी, जिसका कालिदास और श्री हर्ष को उत्पन्न किया था। यही नाट्यधर्मी अथवा आदर्शात्मक एवं कलात्मक प्रविधि थी, जिसका सरसुत नाट्य को कविता संगीत तथा नृत्य धर्मित सवतामूली बना बना दिया, जो भारतीय रगमच की एक विशेष उपलब्धि है। भरत ने इस प्रकार की मृष्टि की अपक्षाट्ट अथवा थल धीर कलात्मक मानकर इस आभ्यन्तर' कहा और दूसरी सहज मृष्टि (लोकधर्मी) का अल्पकलात्मक मानकर बाह्य कहा है।

ससुत माल के राजकीय सरक्षण में होनेवाली तथा उस मृग क सामत तथा आभिजात्य दण्डवग से पोषित नाट्य धर्मिताण स्वभावतः नाट्यधर्मी थी। 'नाट्य शास्त्र दशरूपक' और 'अभिनयनपण' आदि में नाटक, अभिनाय, दण्ड रस आदि के स्तर से जितने विलष्ट सिद्धान्त और शास्त्रीय मर्यादाएँ उनमें दी हुई हैं उन सब शास्त्रीय गुणा का निर्वाह नाट्यधर्मी नाट्य में अनिवार्य था।

ससुत 'नाटक' नाट्यधर्मी परम्परा और शास्त्र का प्रतीक है। पर इस शास्त्रीय नाटक से अलग जा सहज जीवन सहज उल्लास का नाटकीय माध्यम था, जिसकी समूची रचना पद्धति अमृष्टनिम थी उस 'लाह नाटक' का मया व्यावहारिक रूप और उदाहरण था शास्त्रीय नाटक की भाँति उसे जानने में हम उतने सफल नहीं हैं।

प्रथमतः स्वयं नाट्य शास्त्र में लोकधर्मी नाट्य परम्परा के विषय में का एक श्लाका का अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा गया है। स्वभावा लोकधर्मी' में ही जैसे उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को स्पष्ट कर लिया गया है। इससे आगे माना उससे विषय में कुछ कहना अपभित ही नहो था। वस्तुतः जो स्वभाव है उसमें विषय में और विशेष किस कोइ शास्त्रकार कुछ कह सकता है। हाँ, जो कला निष्ठ है कला और शास्त्र के तत्त्वा तथा आग्रहा को जानकर चलता है, निश्चय ही उससे विषय में शास्त्रीय सिद्धान्ता तथा नियमा को पारित करना होगा और उन शास्त्रीय गुणा का निर्वाह उसमें अपेक्षित होगा। तभी सारा नाट्य शास्त्र केवल नाट्यधर्मी रूपा तथा सिद्धान्ता का निर्माण ग्रन्थ है।

ता लाकधर्मी क्या है उसकी परिभाषा तथा क्षेत्र क्या है, इसमें विषय में केवल तरह-व अघ्याय के अन्तगत नाट्य प्रवृत्ति प्रमग के अंत में अनेक श्लोक दिए गए हैं। इसके पीछे निश्चय ही लाकधर्मी नाट्य-परम्परा का प्रति शास्त्रकार का वाद, किसी प्रकार का अवनाभाव नहीं था। क्यानि नाट्य शास्त्रकार ने, जसा

क्षण और उसकी प्रेरणा भूमि लाक-जीवन है और उसकी वास्तविक कसौटी भी लाकचित ही है ।

लाक-नाटक में जन जीवन, उसकी उमगा और भावनाओं की अभिव्यक्ति स्वाभाविक थी, अतः लोक-नाटका का कोट भी शास्त्र शास्त्रीय पद्धति से नहीं बाँधा जा सकता । जो सीमित है जो कला के नियमों के अंतर्गत है शास्त्र उसी पर लागू हो सकता है क्योंकि उसका क्षेत्र निश्चित है । पर जो असीम जीवन पर्य है जो हम स्थावर जगम चराचर सृष्टि का परम स्वाभाविक ढंग से अपने सग चकर चलने वाला है उसका कोट भा शास्त्र कम और कहा तक हिसाब लगा सकता है अथवा उसकी बान बना सकता है । सत्तार में मकड़ा प्रकार की भाव चपटाए हैं निश्चय ही जन जीवन में मनोरंजन की अवधारणा महज प्रवृत्ति में उनकी सनातन परम्परा में उसका हिसाब कितना अनिश्चित ही होगा । अतएव लाक-नाटका का परांभण आकलन तथा अवधारणा नाट्य शास्त्र अभिनय रूपण और दृश्यरूप आदि के आधारों से कभी नहीं हो सकता ।

लाकधर्मिता

लोकधर्मों नाट्य-परम्परा का प्रधान लक्षण है—स्वाभाविक ढंग से प्रकट हुआ उजागर किया हुआ ।

लाकधर्मों में भी दो भेद हैं शुद्ध स्वाभाविक और विवृत स्वाभाविक । पर एत दाना का मूलधार वही एव ही तत्त्व—लोकज्ञान तथा लौकिक क्रियाएँ (चपटाएँ) दानो हो । (अभिनव पत्र में) अगलीला नहीं हानी चाहिये ?^१

अभिनय पूणत स्वाभाविक है और उसमें (लोक-नाटक में) नाना प्रकार के स्त्री-पुरुष पात्र हो । इस प्रकार का जो नाट्य है वह लाकधर्मों है—एसा नाट्य शास्त्र कहना है ।^२

संस्कृत नाट्य परम्परा लाक-नाटक और लोक रंगमंच के फलस्वरूप मयाय

१ स्वभावमाकोपगत शुद्ध तु विवृत तथा
लाकवार्ता क्रियाफलमश्लीलाविराजितम् । ७१ ।

२ स्वभावा मनसापेन नाना स्त्रीपुरुषाग्रयम् ।
यदीदृश भवे नाट्यं लाक मी तु सा स्मृता । ७२ ।

वाद के तत्त्वों से 'गूँथ' नहीं है। लोक को ही भरत ने बारम्बार 'प्रमाण' कहा है। उसमें जीवनगत चरित्रों का अध्ययन है और यथोचित सहज और विविध भाषाओं तथा बोलियों का प्रयोग भी है।

नाट्यधर्मी रुढ़ियों तथा उसके अन्तर्गत शास्त्रों के प्रसंग में रूप सज्जा, वेशभूषा विभिन्न अभिनय रीतियाँ एवं प्रकारों तथा कथन रचना विधि और आभूषण आदि का विस्तृत अध्ययन नाट्यशास्त्र में मिलता है। किंतु इसके बावजूद भरत ने अनुभव किया है कि सब पर अभिनय की अपनी सीमाएँ हैं। इन्हीं शास्त्रगत सीमाओं का तोड़कर अभिनय और अनुष्ठान के क्षेत्र को सहज कर उसे जीवन की भाँति असंशुद्ध बना 'लोक नाटक' की सबसे बड़ी देन है।

संस्कृत रगमच में नाट्य धर्मी और लोक धर्मी इन दो विभिन्न नाट्य धर्मिताओं के फलस्वरूप इसका रगमच, कला और सहज जीवन इन दो विभिन्न मूल्यस्तरों तथा रगक्षेत्रों से विराट रहा है।

लोक-जीवन—उत्सव और त्यौहार भ्रमण भ्रमण कोई भी सामान्य कारण हो, लोक-नाटक का सहज अनुष्ठान जैसे उमड़ पड़ता है। क्योंकि इसमें सब तथा सब रग प्रसाधन की कोई विशेष औपचारिक तयारी नहीं करनी पड़ती।

लोक-नाटक की परम्परा और नाट्य रुढ़ियाँ

लोक-नाटक का तथ्य और रचना विधान शास्त्रीय नाटक के स्तर से कभी नहीं लिया जा सकता। इसमें शास्त्र के स्थान पर लोक परम्परा और चिर विकसित नाट्य रुढ़ियाँ मूल्यवान हैं। फिर भी तार्किक दृष्टि से हममें निम्न लिखित तत्त्व प्राप्त होते हैं—

गीत

नृत्य

पुराण (मिथ) तथा यथाथ जीवन प्रसंग

और लोक-कथा।

लोक नाटक के कथानक वितरित तत्त्व में किसी प्रकार से भी शास्त्रीय नाटक के कथातत्त्व में अप्रतिष्ठित काय अवस्थाओं अथ प्रवृत्तियों और संधियों की आवश्यकता नहीं पड़ती। एवं वे प्राद दूसरी घटना गीत और नृत्य के तान में मिलते मिलती हुई आगे बढ़ती हैं कभी व्यवस्थित ढंग से तो कभी निरन्तर अव्यवस्थित ढंग में—जैसे जीवन में कम-बेला तथा घटनाओं की स्थिति है। तभी लोक-नाटक को जीवन और प्रकृति की सहज 'प्रतिच्छवि' की भाँति मिलती है।



नौक नाट्य



लाव रगमव

गास्त्रीय नाटक बना, दशन और काव्य तत्त्वा के समन्वय से विवक्षित हुआ है पर लोक-नाटक जीवन और आनन्द तत्त्व का लेकर उभागर हुआ है। यह वस्तुतः हमारे जीवन के साथ ही उपजा है, हमारे मन और सम्कार के साथ, हमारी सहज जीवन-प्रवृत्ति से।

इसका मंच जीवन के बीच अपने आप रच उठता है। चारा और जन परिधि में घिरकर, वही भी, किसी स्थान पर—नदी या जलाशय के तट पर, बेल पलिहान में, किसीके द्वार पर किसी उपवन के रम्य भाग में, किसी वृक्ष तले इसका मंच अपने आप उभर आता है। न इसमें पट-परिवर्तन के प्रमाण की अपेक्षा है, न दृश्य-परिवर्तन की आवश्यकता। वही चारा द्वार से दण्ड गच्छित मंचपीठ राजमहल है दीन की कुटी अथवा गृहस्थ का घर है। वही दूसरे की क्षण विप्रेण हा गया, राजसभा युद्धभूमि हो गई और विरह भूमि और मिलन मन्दिर में परिवर्तित हो गया। जैम महामण्डप का जया जया सुभादय, त्या त्या उमम विगट जीवन की गहरगी प्रनिच्छति अपने आप गिच्छती चलती है, टीक उमी प्रकार लोक रंगमंच की, उमर अनौपचारिक, आप्रहरीन मंचपीठ और अन्तर्गत उमके सहज रंगमंच की प्रवृत्ति है। लोक रंगमंच के दृश्यपक्ष, उसके सम्पूर्ण वास्तुपक्ष के स्वप्नदृष्टा जम दण्ड बग हैं। लोक-नाट्य और उसके रंगमंच का दक्षक केवल दण्ड ही नहीं है वह उस रंगमंच का सश्रिय अभिन भाग भी है—उमका मरक्षक और रमरजक दोनों।

गास्त्रीय नाटक में मंचपीठ और दण्ड की रंगमाला के बीच जिस पदों का विधान है—जा अथ और दृश्यान्तर से छुनता और बन्द होता रहता है उसमें नाटक के दण्ड और उमके मंच की तथा लोक-नाटक के दण्ड तथा मंच की स्थितियाँ हैं जमीन आममान का अन्तर हो जाना है। नाटक का दण्ड तथा उमकी मंच स्थिति औपचारिक है—वह नाट्य अनुष्ठान का महज दण्ड है—रस दण्ड—किन्तु उमके और रंगपीठ के बीच में अन्तर है। यह अन्तर आधुनिक रंगमंच में इस प्रसंग से उत्तरात्तर बढ़ता गया है। लोक रंगमंच में कुछ भी कहा स भी कुछ औपचारिकता, दूरी नहीं है। यहाँ तक कि प्रकाश और प्रस्थान भी अनौपचारिक हैं। सब कुछ मान लिया हुआ मंचकी सजीव परिवर्तना पूरी की हुई। सब कुछ इतना यथाय तना यथाय कि मर यथाय का भ्रम ही उठ जाय और लोक उमका अविच्छिन्न भाग होकर उममें जम रगल हो जाय। यथाय लोक मंच पर वह जो कुछ दम रहा है वह सब कुछ जग अपने यथाय प्रनिच्छति रग रहा है। और उमके जीवन की जा क्षति थी, नायक वह वहाँ पूर्ति पा रही हो।

जब ममाज में घिरे हुए अविभक्त मंच पर वह प्रत्यक्ष स्थित रहा है नाटक के मुख में प्रसन्न, गीत गाना हुआ वही अभिनना के मुर में मुर मिलाना हुआ

और वही सीधे उमके दुस्त म, कल्या म सी सी आशुषा से रोता हुआ । उमने देखा घनी को कृपण सापक, डाबू को उगार । उमने पाया कि मत्त मोलनवाला जितना बप्ट भोगता है—उसी सनातन सत्य म वह रो उठता है । पर वह किम प्रकार पुन जी जाना है अपन मन को तउ उह ओजस्वी पाने लगता है जस वह देखता है कि अमुक को तउ स्वर्ग मिना, अमुक का अपन प्रेमी जन म इस जीवन म न सही उस जीवन म तो मिलन हुआ सुख और आनन्द मिला । 'हे ईश्वर जस उम राजा की उस प्रमा को सभी की, वीर पुष्प और सत्यजन पारी की मनोकामना पूरी हुई हे प्रभु उसी याति सबकी इच्छा मनोकामना पूरी ह ।' यह दान मन उमके सम्पन्नित मन का आशीष साक रगमच की अपनी परम्परागत विगपता और उसकी एकांत दक्षित है जा अग्रज सुलभ है ।

अनुष्ठानगत कुछ रग-परम्पराएँ

- मच क लिय लज्ज मचित उसी क बीच की घग्ती अथवा दानक सहित काई भी निरपक्ष स्थान ।
- रूप सज्जा के लिय पुमपुम पहिया गर काजल और मुर्गीय ।
- प्रकाश के लिय मणा ।
- वस्त्र-मज्जा क लिय सामान्य कपड़े—पर गीता की कहिया म लिपटकर व पात्रानुकूल अनुभूत होने लगत है ।
- कभी-कभी चहरो पर मुमोटे और अतिरिक्त रूप-सज्जा ।
- रग प्रसाधन क लिय सही वस्तु की नरन—जस घाडे के दिव काठ का घोडा और उसपर बठा हुआ जग ययाध सवार ।
- गति और काय स दृश्य स्थान काल तथा उसक परिवर्तन का सहज बाध ।

लोचनाट्य म्दिया

ताक नाटक अथवा रगमच म ग्रास्त्रीय नियम उम प्रकार नहीं है । पर इस प्रकार की नाट्यहीनता रगनाट्य विहीनता और मध्याम दृश्यगत श्रीग चारित्र्य तत्त्वा के अभाव म यह मतलब नहीं कि लाव-नाटक म काइ रूपा

ही नहीं। रूढ़ियाँ हर प्रकार की नाट्य-कला तथा रंग प्रकार के लिये आवश्यक हैं, बल्कि रूढ़ियाँ स्वभावन उनमें घमनिष्ठ रहती हैं। हा, सात-नाटक—रंग मंच के प्रयोग में इसकी रूढ़ियाँ अतिविनि ही रहती हैं।

- हृदया और अन्तः का स्थावर पर नाटकीय व्यापार के पूर्ण अंग।
- नाटक की रचना विधि में एक प्रकार की नियमितता जिसके भीतर स्वांग, नक्कल, आशुमवाद तथा हृदय-व्यंग्य के नियमों से प्राप्त जाना जाता है—जिसमें सात-नाटक में सामाजिक चेतना और उसका तीव्र स्वर उभर जाता है।
- हृदय समापोजन का अतिविस्मयी रूप—दृष्टा के बीच में कहीं कुछ भी औपचारिक नहीं।
- उन्मुख मंच के कारण नाट्य-व्यापार की अनुकूलि में महज सीधापन।
- सगान और नृत्य के महज तत्त्व।

सात-नाटक तथा इस रंगमंच की रूढ़ियाँ तथा उनकी परम्पराओं के अध्ययन से जो बात सबसे अधिक आकर्षक और जीवन्त लगती है वह है इसकी हम दिशा में अत्यन्त गतिशीलता। परिवर्तित होने हुए सामाजिक प्रयोग और परिस्थित के साथ उसकी रूढ़ियाँ भी सदा परिवर्तित और विकसित होती रहती हैं। इसका मत यह भी हुआ है कि आधुनिक तथा क्षेत्रीय जन प्रवृत्ति तथा बहुराजी मनोरंजन पद्धति के अनुसार एक ही लोक-नाटक के विविध रूप और गतिशास्त्र में विकसित हो जाती हैं। और उनका सामूहिक अध्ययन में सात रंगमंच की अनुन गति का आभास मिलता है।

नाटक के प्रमाण

नाटक और उसका नाटकीय रंगमंच में नाट्यकार ने उसका सम्पूर्ण और गवाह संपन्नता के नियम निम्नलिखित तीन सत्यां का प्रमाण माना है—

- सात घम
- वक्ता, और
- अध्यात्म।

जा भी नाट्य, घम, गित्य और आचार या सात घम प्रवृत्त है, वह नाट्य है।^१

१ धार्मिक शास्त्रों से ये घम धार्मिक शिल्पानि या विद्या।

लोहकर्मप्रवृत्ति धार्मिक नाट्य प्रवृत्ति है ॥

पिछले पृष्ठा में लोक-नाटक तथा उसके विशेष रगमच के विषय में जो चर्चा हुई है, वह उसकी अपनी विभिन्न धर्मिता और रूढ़ियाँ के प्रसंग में है।

यहाँ नाटक से सम्बन्धित जिस रगमच के प्रमाण की बात उठ रही है, वह 'लोक धर्म' का सत्य है, 'लोक तत्त्व' का नहीं। लोक धर्म से यहाँ तात्पर्य है मानव धर्म से, जो दशक के रूप में रगमच का अंग सिद्ध होता है। क्योंकि नाटक की सफलता का प्रमाण लोकमान में है। इसी आधार पर शास्त्रकार ने नाट्य अनुष्ठान की सफलता दो स्तरों से मानी है—

○ मानुषी

○ दवी।

मानुषी सफलता का मूलधार लोकधर्म का पालन और उसका सफल निर्वाह है। यह मानुषी सफलता विशेषतया अभिनय की कुशलता से प्राप्त होती है। अर्थात् नाट्य अनुष्ठान के समय अभिनेता से पात्र का अनुभावन फिर उससे उससे पात्रगत दुःख सुख से दशक का प्रत्यक्ष सत्याभास और उसके समस्त आवेगों के साथ प्रतिभादन। जब नाटक हास्य स्थिति में हँस पड़े हँस क्षणों में रो पड़े और नाटक की भावानुभूति के समय रामाचिन तथा गदगद हो, वह 'अहो-अहो साधु साधु हा कष्टम' कह उठे।

दवी सफलता का प्रमाण है किसी प्रकार का दबगत विघ्न न पड़ने का, जिस वही नाट्य अनुष्ठान के समय भूकंप न आ जाए, मयानक बपा न आ जाए कोई घायल ग्राहत अथवा बीमार न हो जाए।

वेद से तात्पर्य नाट्यवेत्त अथवा नाट्य शास्त्र के नियमों तथा मिथ्यान्ता से है। इनका यथामग्न पालन उसकी सफलता के लिए परम आवश्यक है।

अध्यात्म से मतलब रगमच त्रिया कलाप में अतिनिहित उस तत्त्ववाद से है, जो अभिनेता, नाटककार और रगगिल्पी को मदद इस सत्य के प्रति सचेत सजग रखता है कि वह जो कुछ रग-कर्म रहा है वह कुछ अर्थ नहीं बल्कि पूजा है देवाधिपति शक्ति की साधना है।

संस्कृत अथवा हिंदू (भारतीय) रगमच की पूर्ण सफलता के प्रमाण में इस प्रकार जहाँ एक ओर लोक धर्म का सत्य है वहाँ दूसरी ओर रग कलाकार और नाट्य-कर्मियों की दृष्टि उसने अध्यात्म तत्त्व पर भी है। एक ओर मानव धर्म दूसरी ओर ईश्वर धर्म ताकि कहीं से कुछ एकांगी और एकाक्षीय न रह जाय।

नाट्याग

भारतीय रंगमंच में नाटक के चार अंग हैं —

- १ पाठ्य
- २ गीत
- ३ अभिनय, और
- ४ रस ।

नाटक के इन चार अंगों की अन्विष्टि में मूलरूप में संस्कृत रंगमंच की प्रवृत्ति का संकेत है । जिस रंगमंच का प्राण रस है, उद्देश्य आनन्द और वल प्राण है स्वभावतः उसमें नाटक के अंगों में एक ही तत्त्व है जो उस मित्र के फलदायक है । नाट्याग में गीत और रस इन दो मूलभूत अंगों का हाना वस्तुतः उसमें अन्तर्भूत रंगमंच की महिमा है । काव्याग रस निष्पत्ति का व्यावहारिक अंग है परन्तु नाट्याग में पाठ्य का स्थान सर्वप्रथम है ।

नाटक के विषय

नाटक का विषय सर्वत्र नाटक की प्रवृत्ति और उसकी आत्मा के अनु रूप होता है । इस प्रकार ज्या-ज्या नाटक की अन्तर्भूत आत्मा में विकास होता चलता है स्वभावतः उसका विषय-वस्तु में भी परिवर्तन होता रहता है ।

भारतीय नाटक की आत्मा रस है—जिसका मूल-आधार भावजगत है । यहाँ भाव-जगत रस का आधार है । नाट्य शास्त्र में भरत ने द्रष्टा के मुख में, जिनके पास दृक्नागण पीठा और कर्ता से अन्तर्गत समार के लिये आनन्द की भावना करने लगे थे कहलाया है अतः कर्म्य सर्वस्य नाट्यभावानुकीर्तनम् यह 'नाट्य' तीनो शब्दों का भाव का अनुकरण है । इसमें व्यापक मानवता के भाव रहते हैं । इसमें मानवता में सर्वधर्म विषय प्रमग के साथ ही-माय तन्निर्णयक भाव की प्रधानता भी रहती है । और यह भाव की प्रधानता नाकवृत्त के अनुकरण पर आधारित रहती है

नानाभावोपसम्पन्न नानावस्थातरात्मकम् ।

लोकवृत्तानुकरण नाट्यमेतन्मया कृतम् ॥

नाटक की प्रवृत्ति और इसमें उद्देश्य से हमने विषय-क्षेत्र का स्पष्ट संकेत मिल जाता है । 'सर्वान् नाटकं यद् दृश्यं काव्यं है जो प्रत्यक्ष, कल्पना तथा

अध्यवसाय का विषय वा सत्य एवं अमृत्य स समन्वित त्रिलक्षण रूप धारण करके सबसाधारण को आनन्दोपलब्धि कराता है ।”

‘शास्त्रकार (नाट्य शास्त्रकार) ने नाटक के विषय प्रमग म कहा है

देवताना मनुष्याणा राज्ञां लोकमहात्मनाम् ।

पूववृत्तानुचरित नाटक नाम तदभवेत् ॥

अर्थात् देखता मनुष्य राजा एवं महात्मा के पूर्ववृत्त का नाटक के विषय-क्षेत्र म लेना है । राजा, मनुष्य और ऋषि का वृत्त स्वभावतः उन्नत भाव त्रिपया का क्षेत्र है जिसम त्या क्षमा त्याग के आन्श तत्त्व प्राप्त है । हमके साथ ही उनम भावोप गुण लोप धृष्टा मोह काम घम विद्या अविद्या, व्रतय आदि तत्त्व भी यथासंभव समाहित होते हैं । परन्तु इस बात पर, कि वही से भी नाटक के नायक के चरित्र का उन्नत पक्ष आहत न हो । इसने लिये ऋषि ‘ताप, दक मयोग’ आदि की अवतारणा करनी पड़ती है । शास्त्रकार ने जहाँ नाटक के लक्षणा म पाँच सधिया, चार वृत्तिया, चौंसठ भगा छत्तीस लक्षणा—अनक नाटकालवारा की चचा की है, वहाँ उसने नाटक के विषय म यह संकेत दिया है कि वह अत्यन्त सरस उत्तम भावा म समन्वित, चमत्कारपूर्ण रचना (प्रसग) स पूर्य महापुरपा के सत्कार स युक्त, आन्श आचरणमय सधिया से युक्त प्रयोगो म रमणीय सुख का आशय, मृदुन सत्ता से समन्वित (रचना) हो ।^१

इसी लिय नाटक के लिये पौराणिक और ऐतिहासिक क्या तथा उन्नत चरित्र का विषय अनिवार्य माना गया है—क्याकि नाटक के द्वारा समाज और राष्ट्र की भावना का पाठ पढ़ाना था । नाटक म प्रत्यक्षन अस्त वाक्या, कुसत्या की प्रधानता का मनलब, नाटक के समूचे रूप और मयाणा और उद्देश्य की ही सवधा क्षति थी । जीवन के स यथाय पक्ष की अभिव्यक्ति के लिय एक दूसरी ही नाट्य परम्परा—साकधर्मी थी । और रूपक के भेदा म ‘नाटक’ स दूतर भय प्रकार थे जमे प्रररण भ्राण आदि ।

पर शास्त्रीय नाटक के विषय सदैव उदात्त मूल्या जीवन आन्शों तथा महिम क्या और प्रसिद्ध वग म उत्पन्न, धीराणात्त प्रतापी गुणवान, राजपि दियान्द्रिय पुरुष चरित्रा के ही बीच से ग्रहण किय जा सकते थे ताकि इसम

१ १८ सधियत्रुः त्रिचतुः षष्ट्यंशमनुमम् ।

१८ त्रिशतशेषतमन्वकारोपयोगितम् ॥

मन्तरमशयोगमुत्त रचनान्वितम् ।

महापुरष सत्कार साध्याचार जलप्रियम् ॥

मुरिल सन्वियोग च मुद्रयोग सुखाश्रयम् ।

मृदुसन्वितान च कवि कुर्यात् नाटकम् ॥

विलास, आनन्द, समृद्धि आदि गुणों और तत्त्वा तथा अनेक रसा का समावेश हो सके, विशेषकर शृंगार अथवा धीर प्रधान रस के रूप में—ताकि समाज को नाटक से आनन्द मिल सके—उत्तम ऐसे नाटकों की स्थापना हो, जो जातीय गुणा तथा राष्ट्रीय मयादाओं के उज्ज्वलतम उदाहरण हों।

नाटक अपने विषय क्षेत्र में आदर्श मानव मूल्य तथा मानवता के उदात्त रूप की अभिव्यक्ति को सदैव मानकर चला—जिस अभिनेता 'गुरु-तत्त्व'।

जो रूपक प्रकार समाज की अपेक्षाकृत वास्तविक रूप रचना के आधार से चला, उसे 'प्रवरण' की मना मिली है—जैसे 'गुरु' रचित 'मृच्छकटिकम्'।

नाट्यगत मायताएँ और भारतीय जीवन-दर्शन

हिन्दू रंगमंच और उसकी इतनी उदात्त नाट्यगत विशेषताएँ तथा मायताओं के पीछे वस्तुतः भारतीय जीवन दर्शन की अत्यंत प्रेरणा कायम कर रही है। इसके माय-झी-माय यहाँ की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि उसकी चेतना में कायम है। ये बातें इतनी विस्तार, तथा जीवन निष्ठ हैं कि इनसे भारतीय नाटक अथवा रंगमंच ही नहीं, अपितु इसकी समस्त कलाएँ में जो एकात्मिक जीवन-स्तर उठना है वह मुख्यतः पश्चिम के नियमों आश्चर्यजनक है। इसके साहित्य में, नाटक अथवा रंगमंच में, कलाओं में कहीं भी, किसी भी स्तर से अस्तित्व या मृत्यु का भाव नहीं है। पुनर्जन्म और कर्मफल में आस्था के अन्तर्भाव यह भ्रमों का जीवन और जगत अपनी वास्तविकता सहित उचित और सामंजस्यपूर्ण है। यदि दुःख है तो इसमें अस्तित्व होना का कोई हेतु नहीं, क्योंकि मनुष्य इस जगत में अपने कर्म का फल भाग्य को भागा है। इस तरह अस्तित्व के अभाव में सामाजिक व्यवस्था के अस्तित्व, उत्साह और उत्सव के अनुष्ठान बना दिया है। यही कारण है कि भारतीय चित्त इन उत्सवों को केवल एक ही दिशा का विश्राम नहीं समझता, यह इसे मायत्व मानता है। नाच, गान नाटक केवल मनोविनोद नहीं हैं, परम मायत्व के जनक हैं, इनको विविधतरुण से शून्य के अनेक दुःख और विघ्न नष्ट होते हैं। पाप क्षय होता है और मुलनित फसावाला कल्याण होता है।

मायत्व सतितश्चैव ब्रह्मणो वदनीयमयम् ।

मुमुक्षुश्च पवित्रश्च शुभ पापविनाशनम् ॥

(नाट्यशास्त्र)

कला-मनीषी तथा रचनाकार सदा यह मानकर चलते हैं कि कला यही थपट

कि दुख का निरोध हाता है, तभी मनुष्य इस जीवन में मोक्ष पाता है। इससे पीछे विशिष्ट रूप में भारतीय आत्मावादी दृष्टिकोण है, जो मनुष्य के गुण, मंगल में ही केवल विश्राम नहीं करता, बरन जो इसमें भी अपनी आस्था रख कर खनता है कि मनुष्य में गुण और माणविक विकास भी होता है। यह अदभुत आत्मावाद की दृष्टि, पश्चिम से सवधा, भिन्न, सवधा दूसरे ही जीवन मूल्य की ओतव है।

जीवनगत इस दृष्टिकोण का व्यवहार भारतीय नाटक में किस प्रकार हुआ है ?

इस व्यवहार का मूलवेद्र है भारतीय नायक—जिसके चरित्र का मूलाधार है धीर' तत्व। उसका सारा चरित्र इतना मययी आदर्शवादी और उदात्त है कि उसमें पश्चिम-जस सघर्ष' की समावना ही नहीं है। यह भारतीय नायक न भाग्य का पुतला है न रहस्यमयी निवसतामों का उगाहरण। यहाँ नाटक का नायक सघर्षों तथा विघ्ना को कुचनता पददलित करता निरंतर भाग बढ़ता है और अपने लक्ष्य को अन्ततः प्राप्त करता है। फलतः यहाँ के नाटकों का अन्त जनप्राप्ति में ही हाता है, पश्चिम की भाँति निराशा और असफलता में नहीं। इसका मूल कारण है कि यहाँ नाटक का घरातल निश्चय ही यथाय स ऊँचे उठकर वही आदर्श स्तर पर है। ठीक इसके विपरीत पश्चिम के ड्रामा' का घरातल यथाय स्तर पर है। स्वभावतः ड्रामा के चरित्रों की स्थितियाँ हमारे यहाँ के चरित्रों की स्थिति से भिन्न है। ग्रीक और रोमनपौरियन युवातकी के नायक स्वभावतः अपने जीवन की विरोधी शक्तियों पर विजय नहीं प्राप्त कर पाते हैं और अन्ततः उनका जीवन कारुणिक पतन को प्राप्न होता है। उसके लिय पश्चिम का नाटककार जीवन की अनुकरणात्मक कृत्ति में प्रेरित होकर अथवा अपना यथायवाद के आग्रह से नायक के चरित्र में कुछ ऐसी मूत्र कमी मिश्रित करने थे कि स्वभावतः वे पतन तथा असफलता के निवार हो जात हैं।

समय यह है कि भारतीय नाटक में चरित्र निर्माण ड्रामा' के चरित्र निर्माण के स्तर पर वभी होता ही नहीं। यद्यपि यह सच है कि पश्चिम के जीवन दान और बला सिद्धान्त के फलस्वरूप उनो वहाँ का चरित्र प्रभाव की दृष्टि से बहुत ही गतिगाली सिद्ध हुआ है ठीक जमे भारतीय साहित्य में वेदध्यास प्रणीत महाभारत के चरित्र। पर भारतीय नाटक का चरित्र मृज्ज सवस अमूठे स्तर पर हुआ है विमूढ रस मृष्टि के स्तर पर। और स्वभावतः इसका मारा क्षेप आनन्द का है। यही कारण है कि भारतीय नाटक अपने घाप में प्रकाश, हरियायी उद्यान, आवाग नगी, पवत, पुण बाटिका, राजपथ सोदय और उल्लास के परिवेग से भरे पड हैं। बादल यहाँ भी हैं (अर्थात् सघर्ष यहाँ

भी है) पर य यहा प्रवास को और दीप्त करत है । उसे बुझाते नहीं । यहा के नाटक म ऊची नीची जमीनों ह, जिससे दुःख्यन्त के रथ का वग कम हो गया था, जिसके कारण उसे निराश होना पडा कि आभेट का वह मृग सामन से ओभल हो गया । बतरह धून उडती है । किन्तु दूमरे ही क्षण दुःख्य त का रथ उससे आगे निकल जाता है । यहा तक कि रथ क घोडा पर धूल तक नहीं लगती । जमीन भमतन हो जाती है । मृग भी सामने है । राजा उस पर बाण छोडने को हाता है । एकाएक बाधा फिर आती है । नेपथ्य म कोइ पुकारता है, 'हे राजन यह आथम का मृग है । इमे मन मारो मत मागे' । राजा धनुष पर म बाण उतार लेता है । अजड स्थिति ! यह तपस्वी कौन है ? इस गति मे कोई भी प्राप्ति नहीं है क्या ? चारा ओर से राक घाम ही है क्या ? तभी तपस्वी हाथ उठाकर कहता है—“तुम अपने ही गुणा मे युक्त एक चक्रवर्ती पुन पामो ।’







विद्वान्

संस्कृत-रगमच
प्रस्तुतिकरण पक्ष

संस्कृत नाट्य-प्रदर्शन (प्रस्तुतिकरण) की परम्परा और पद्धतियाँ

संस्कृत नाटक के आधार में जहाँ एक निश्चित जीवन-दर्शन है, जहाँ उसमें नैत्यात्मक विशेषताएँ हैं, वही उसमें नाट्य गिल्स और नाट्य प्रणाली की कुछ निश्चित पद्धतियाँ और परम्पराएँ भी हैं। दूसरी ओर भारतीय संस्कृति के इतिहास में संस्कृत नाटका के प्रस्तुतिकरण के पीछे सदैव एक महत्वपूर्ण उद्देश्य था। जहाँ कलावत आचार्यों तथा रमण सामाजिक के अनुसार रसानुभूति नाटक का मुख्य उद्देश्य है, वहाँ उन्होंने यह भी कहा कि कला का धर्म मनुष्य की शिक्षा प्रदान करना है, जिसमें वह अपने समक्ष देखे गये प्रस्तुत नाटका के नायका के चरित्र का अनुकरण करे—नभी संस्कृत रंगमंच में सर्वथा आदर्श नायका की रचना होती थी। लेकिन समाज का क्षेत्र और स्तर अत्यन्त विस्तृत और गहन है। इसके प्रतिनिधित्व के लिये तथा इसे प्रकाश देने के लिये संस्कृत रंगमंच में मनोरंजन, सौन्दर्यवादी तथा सोद्देश्यता के घरातल के नाटक के प्रतिरिक्त (हृदय के) अन्वेषण विभेद हैं।

‘प्रकरण’ में मनुष्य के प्रेम की विजय चरित्र तथा पवित्रता का चित्रण किया जाता था। यह प्रायः कवि-कल्पित प्रेम-कथाओं के आधार पर भी निर्मित होता था।

धूर्तों और दुष्टों का हास्यात्तेजक उपस्थापन मूलक रचना का भाग कहते हैं। रंग रचना की दृष्टि से उसके उभय निम्नलिखित हैं

- भाग में ऐसी स्थिति होती है जिनमें अपने अथवा दूसरे के साहसिक कार्यों का पता चलता है।
- इसमें केवल एक शक होता है और दो संधियाँ।
- भाग का नायक विट होता है।
- इसमें मर्त होना है—अथवा विय जान है।
- भाग, आकाश भाषित प्रनात्तरा से भाग जाता है।
- इसमें हास्य का तो प्रयोग होता है पर इसमें शृंगार-दानव कोणिका वृत्ति नहीं आती।

संस्कृत ग्रहमन्त्र और भागों में चाट करन हँसी उड़ान तथा तत्कालीन समाज की कामुक और ढागी वृत्तियाँ के प्रणाली का अन्धका मुयाय मिलता है।

पर 'चतुर्भाषी' के अतिरिक्त जा भी प्रहसन और भाणु बच गये हैं, उनमें रुद्रिगन बल्लन, कामुवना गान्धी गजौज और अ लीसता के ऊपर कोई नई बात कम मिलती है।

'भाणु' के आगे 'व्यापीग' आता है—श्रीहीन, वीररस प्रधान एकाकी जैसा। फिर 'समवकार'—तीन अक्षरों का। भयानक हृद्यो को दिवानेवाला भूत प्रेन, पिनाचा का उपस्थापक 'डिम', स्वर्गीय प्रेमिका के साथ जुझ पड़न वाले, प्रेमिया में प्रतिद्विष्टता फलानेवाला 'इहामृग' स्था लोक की करण-जया निवानेवाला एकाकी 'अक'। एक ही पाप द्वारा अभिनीयमान पिनाद और शृंगार प्रमान पीपी—हंसानेवाला प्रहसन' आदि। इनके अतिरिक्त उपस्थापक होते हैं—जिनमें 'नाटिका' का महत्व सबसे अधिक है। और इसका कायक्षेत्र साधारणतः राजकीय अन्तःपुर तक ही सीमित था। 'प्रकरणिका' 'सदृक' और 'नोटक' इसी श्रेणी के हैं। गोष्ठी में दस पुरुष और पांच ठ स्त्रियाँ अभिनय करती थीं। हस्तोत्तम' में एक पुरुष कई स्त्रियों में साथ अभिनय करता था। इस तरह अठारह प्रकार के उपस्थापक या अभिनय और प्रस्तुतिकरण सस्कृत मात्र पर होना था।

इस प्रकार सस्कृत रगमध अपने प्रस्तुतिकरण क्षेत्र में कितना व्यापक और गहन है, इसका समझें बड़ा प्रमाण है, दत्तन प्रकार के नाट्य रूपों की व्यावहारिक स्थिति।

प्रस्तुतिकरण की मूल दृष्टि

सस्कृत रगमध में प्रस्तुतिकरण की मूल दृष्टि रस निष्पत्ति का मर्म था। इसी प्रतिपाद के नाटककार नाटक की रचना करता था, स्वभावतः इसका प्रस्तुति करण में वही रचना-तत्त्व आवश्यक था। 'रस' के परिप्रेक्ष्य में सस्कृत का नाटक वार नाटक निश्चित समय घटना और काय-व्यापार में उसने भावात्मक पक्ष को अधिक ध्यान में रखता था उससे बौद्धिक पक्ष को कम। इसका पीछे भावात्मक मन्त्राभूति का सिद्धान्त कायरत था। उदाहरण के लिये प्रेमी का भावात्मक कायात्मक स्वरूप रचा जाना था, वास्तविक प्रेम रचना हृद्यरूप में नहीं रखी जानी थी—ताकि दर्शक उस भाव की वैचल्य आत्मानुभूति करे।

१. चतुर्भाषी (चतुर्भाषीन शृंगार हाट) सम्यक् अनुवाक भी मोतीबन्द भी शम्भु शरण अग्रज—पृ. ५५, पृ. २

प्रकार—हिन्दी अर्थ रत्नाकर कायात्मक, समझें।

इस 'काय' सत्य की भांति ही स्थान-मत्स्य की भी बात थी। उदाहरण के लिए यदि पात्र पर्वत पर है किसी पहाड़ी प्रान्त पर उसमें रंग व्यापार हो रहा है, अथवा वाग-उपवन में वह स्थित है, तो मंच पर यह आवश्यक नहीं कि उस देश-सत्य का पूरा दृश्य चित्र प्रस्तुत हो—जमा कि आज यथायथादी रंगमंच पर रखा जाना है, वरन पात्र, और उसकी पात्रता निरादृत वाला अभिनता उस दृश्य मत्स्य का कथन कर तथा उसी के अनुसृत वह अपनी क्रिया प्रक्रिया दे जिममें कि उसमें माय नाटक दक्षनेवाला दगा उसी क्रिया प्रतिक्रिया में अपने भाव जगत में जागृत रह और पात्र अपने मानसिक जगत में अभिनता के सहारे अपनी कल्पना गति से अपने आपको पर्वत, उपत्यका, उद्यान और वाग उपवन में अनुभूत कर। इस प्रकार संस्कृत नाटका के प्रस्तुतिकरण में बिना किसी यथायथा दृश्य के अभिनेता के सहज कल्पना, कथना और तत्त्वस्वरूप मुद्राभा प्रतिश्रियाभा के सहारे दगा नाट्य-मत्स्य को हृदयगमक अपने भावनाशोक में उसकी अनुभूति करता रह।

इस प्रकार 'गाङ्गुल्लम' का अभिनता जो दुस्तुत की भूमिका कर रहा है अपनी मुद्राभा गतियों तथा व्यवहारा सदाकों में इस सत्य की अनुभूति करायगा कि दुस्तुत मालिनी नदी के तट पर आ गया है और उसकी गीतल वायु से वह आनन्दित हो रहा है। 'मृच्छकटिकम्' में इसी भांति जब 'गार्दिलक' चारुत्त के घर में चारी के लिए संधि मारता है तो वह सहज इस सत्य का अभिनय करता है—वाणी से कहकर और उस काय का केवल अभिनय प्रस्तुत कर। वह वास्तविक काय नहीं करता। ऐसा क्या? इसी लिए कि जब मंच पर दगा वास्तविक काय होते, घटना घटत दवेगा, तो यह उसकी सह-कल्पना कमे करेगा?

'गार्दिलक' चारुत्त के कथ में जब चोरी के लिए प्रवेग करता है तो मंच पर वस्तुतः आधुनिक मंच की भांति वस्तुतः गली नहीं रहती, अभिनता केवल दगा में कल्पना जगाने के लिए उसी उपासना में कहता है 'ओह यहा बोला रानी है यहा बांमुरी है, यहा मृग है। मग कितना बड़ा दुभाग्य है कि मैं एक ननक के घर में घुम आया। अतएव संस्कृत रंगमंच में नाटक की सारी स्थिति मंच पर निष्प्राण दग से नहीं रची जाती, वरन वह मारी नाट्य स्थिति अभिनता के हृदय में मजायी रहती है। तभी संस्कृत नाटक में इतन कवित्व-पूरा कथन और कथनापकथन की स्थिति रहती है। यदि वह आधुनिक रंगमंच की भांति वस्तुगत स्तर पर हानी तो उस तरह के काव्यात्मक कथनों की कोई आवश्यकता ही न थी। भूत उद्देश्य क्याकि दगा में उस नाट्य स्थिति का उपाय दना जाना था—उसका सहज परिचय और ज्ञान नहीं।

इसमें यह स्पष्ट है कि संस्कृत रंगमंच पर प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से हृदय कथ की आवश्यकता नहीं थी। मारी अनुष्ण नी प्रतीकात्मक और प्राग्

मूलक थी। संगीत का योग नाट्य अनुष्ठान में आदि स अत तक होना था। इसमें भी वाद्य संगीत की प्रधानता थी।

विशेषकर नाटक के आरम्भ में वाद्य संगीत की बहुत बड़ी प्रथा थी—जिस पूर्वार्ग अथवा नाटक आरम्भ होने के पहले की प्रिया कहते थे। 'पहले नगाड़ा बजाकर नाटक आरम्भ होने की सूचना दी जाती थी, फिर गायक और वादक लाग रगभूमि में आकर यथास्थान बैठ जाते थे। कोरस आरम्भ होता था। मृदंग, वेणु बीणा आदि वाद्य नतक के नूपुर भकार के साथ बज उठते थे, और इन कार्यों के बाद नाटक का स्थापन होता था।'

अभिनय पक्ष में अभिनय और नृत्य दोनों का अलग अलग देखना कठिन है। इस अभिप्राय और नृत्य के मदभ में प्रस्तुतिकरण के स्तर से नृत्य, 'नृत्य' और 'अभिनय' के कलात्मक प्रयोगों का ज्ञान लेना आवश्यक है। नृत्य और 'नृत्य' दोनों में विभिन्नता है। नृत्य में भावा का अनुकरण प्रधान रहता है। इसमें आंगिक अभिनय पर बल दिया जाता है और साथ ही उसमें पद्म का अभिनय रहता है।

और 'नृत्य' में केवल भंग विशेष होता है। यह भंग विशेष ताल और त्रय पर अभिहित होता है। 'अभिनय' 'अभिनयति हृत्पतभावान् प्रकाशयति मन के भाव को प्रकट करने वाली आंगिक चलाया द्वारा किसी विषय अथवा व्यक्ति का अनुकरण करके प्रदर्शित करने का कहते हैं। किन्तु इसमें याह्य काय-व्यापार प्रदर्शित करना उतना अभिप्रत नहीं होना जितना कि मन के भाव का व्यक्त करना इसका प्रधान धर्म है। इसी लिये सस्कृत प्रदर्शन में आंगिक 'वाचिक' 'आह्वय और सात्त्विक' अभिनय के इनमें अधिक अंतर और पक्ष हैं। इस प्रकार सस्कृत रगमच का अभिनय, नृत्य तथा 'नृत्य' को अपने में समाहित किया हुआ है। क्योंकि जहाँ 'नृत्य' में भावा की अभिव्यक्ति है और जहाँ 'नृत्य' में केवल भंग विशेषण होता है वहाँ अभिप्राय 'भवस्था की अभिव्यक्ति के स्तर से रसाभित हा के कारण यह सबसे अधिक भावभूमिक और तब प्राप्ती होता है। सस्कृत रगमच में अभिनय की इनकी उदात्त मर्यादा इसी नियम है कि इसी के माध्यम से (वाणी वस्त्र और भावाभिनय) अभिनयता एक और मूल कथा के व्यक्तियों का आरापण निभाना है और दूसरी ओर अभिनय द्वारा विविध प्रकार के भावा की अभिव्यक्ति देता हुआ देना के उन भावा का जगाना हुआ, सार नाट्य अनुष्ठान का समन्वित मय करता है।

अभिनय की इस गरिमा के पीछे एक कारण यह भी था कि सस्कृत मंच

पर यथायवादी ढंग की न तो साज-सज्जा थी, न कोई विशेष मंच-सामग्री। यथाय का तत्त्व केवल वस्त्र विन्यास और वचन (वाणी) तक ही सीमित था, शेष नाट्य-तत्त्व जैसे 'काल' और 'परिस्थिति' ने यथायवाद से परे थे। इन सबका एकांत प्रभाव संस्कृत प्रस्तुतिकरण पर यह था कि रंग अनुष्ठान का सारा बल 'प्रभाय' पर था, मंच के बाह्य तत्त्व पर नहीं। मारा अनुष्ठान कल्पना जमाने वाला होता था, महज यथाय दृश्य दिखाकर वहाँ का वही शांत कर देने वाला नहीं। इस तरह संस्कृत प्रस्तुतिकरण में सामाजिक श्रवण दशक उसका एक अभिन्न तत्त्व और धर्म था। दशक यहाँ मूक अभिनेता थे, जो अपने हृदय जगत में मंच के अभिनेता से कहीं अधिक भाव और रस के उपभोक्ता थे।

नाट्य प्रदर्शन के प्रसंग में यह बात विशेष रूप से ध्यान देने की है कि संस्कृत नाटक में कथन सम्बन्ध, काव्यात्मक, दृश्यात्मक, वचनान्तरक है—और दूसरी ओर उमम काय, 'गति' और 'मुद्रायें' भी संनिहित हैं। 'प्रभितान' 'शाकुन्तलम्' तथा 'मृच्छकटिकम्' इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में प्रादि से अतः तक इनके कथन—पाठ्य में वही नाट्य गति स्थितियाँ निधमान हैं। 'शाकुन्तलम्' तो इस दिशा में द्वितीय है।

उदाहरण के लिये 'शाकुन्तलम्' का पहला दृश्य जहाँ काम गति और दृश्यात्मक वचन तीनों तत्त्व परस्पर सम्मिलित हैं। यहाँ के कथनापकथन ऐसे हैं, जैसे पाठ के अनिरिक्त य रंग निर्देशन भी हैं। इनके चित्र से लगता है, जैसे य किसी नृत्य प्रदर्शन के चित्रित भाव चित्र है। रथ पर सवार राज्य में धनुष लिये राजा दुष्यंत और सारथि से बातें (कथनोपकथन) हो रही हैं। और उन्हीं में से काय के अनिरिक्त दृश्यात्मक वचन गति, काय और मुद्रायें लिखती जा रही हैं। जमीन ऊँची नीची है इसलिये सारथि ने घोड़ा की बागडोर खींच रखी है। अतएव रथ का वेग कम हो गया है। इसी लिये मृग दूर निकल गया है। राम ढीली करता है सारथि। रथ तेज हो जाता है। घोड़े इतने वेग से दौड़ रहे हैं कि अपने ही परास उड़ती हुई धूल से भी वे भाग रहते हैं। चमर के समान लगी हुई उनकी भस्तर की कलगी तनिक भी नहीं हिलती डुलती और घोड़ा ने कान बढ़े कर निय है। मृग तिलकुल नज़दीक आ गया है। राजा बाण चलाता है उसी समय नेपथ्य से आवाज़ आती है—'० राजन्, यह आश्रम का मृग है, इस मत मारो इस मत मारो।'।

लगता है, यह मृग कथोपकथन नहीं, साक्षात् प्रदर्शन का पूरा का पूरा चित्र है। लिखी हुई खनारा आवाज़ में (अभिनेता के) दौड़ते हुए तथा पास लिखते हुए मृग की छाया उभर आया है। राम लिखी हुई है। रथ हिल रहा है। राजा जम ही बाण चलाना चाहता है, कि आश्रम के भीतर से एक शिष्य के गाय तपस्वी आकर बीच में पड़ा हो जाता है। और उस तरह इस छोटी सी

कथा, काय को चरमसीमा प्राप्त हो जानी है। जैसे किसी संगीत के अलाप को मम मिल जाय, उसे कोई नृत्य, करण और अंगहार से पूरा होकर एक बिन्दु पर सम्पूर्ण हो जाय।

यहाँ गन्ध और गति प्रचार दोनों एकात्मिक हो गये हैं।

पूरे प्रथम अंक के कथना में काय और गति का माना चल चित्र पूरा होता है—मंच दृश्य और अभिनय दोनों आयाया से। प्रदर्शन पद्धति में कथा, काय और गति इन तीनों की परस्पर अतिवृत्ति संस्कृत नाटक की पहली विशेषता है।

'गान्धर्व' के चतुर्थ अंक में प्रदर्शन पद्धति का एक दूसरा मुख्य तत्त्व उल्लेखनीय है। यहाँ दृश्य है स्थिति में पूजा के दृश्य, जब 'गान्धर्व' दुल्हन के रूप में आश्रम में विद्या से रही है। एक नये काय का 'गुभारम्भ' है यहाँ। वह आश्रम काया में अब पत्नीत्व की ओर जा रही है। वह जब चेतन पशु पक्षी और मानव सब को विद्या दे रही है। मंच पर परिवर्तित नामग्री, रंग वर्तु को अभिनय द्वारा 'गान्धर्व' सम्प्रेषित कर रही है।

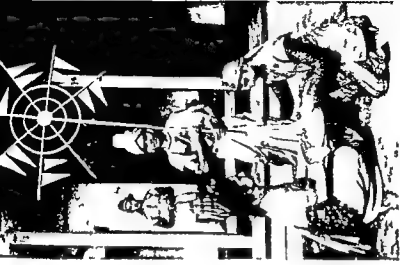
संस्कृत मंच पर निम्नलिखित दो धरातल होते थे। इन धरातलों में अतिरिक्त मत्तवारिणी के सामने अलग अलग दृश्यों की भाँति योजना होती थी। इस मंचीय विशेषता से भाग्य प्रदर्शन का अर्थ तत्त्व आता है—काय और दृश्य का क्रमिक रूप और दूसरे दृश्यों और अनुभव की ऐसी स्वतन्त्र व्यवस्था जो एक दूसरे में अलग और पूरा हो। तथा अतनागत्वा उन्नी एक काय अथवा अर्थ के अंगी हो।

'मृच्छकटिकम्' में इस पद्धति का एक सुन्दरतम उदाहरण है। पहले अंक में हम देखते हैं कि चारदत्त अपने घर में विदूषक के संग बातें कर रहा है। गहसा काय का क्षेत्र, अथवा दृश्य बदलता है मंच पर जहाँ मध्याह्नक बसत मना का पीछा कर रहा है। यह काय दृश्य पूरे विस्तार में चलता है। और जब यह अनुक्रम समाप्त होता है तब काय या दृश्य फिर वही पीछे लौटता है, यहाँ चारदत्त अपने विदूषक के संग बातें कर रहा है। यह बात वही से फिर शुरू होती है जहाँ से थम गयी थी। 'मृच्छकटिकम्' में यह रंग पद्धति पूरे नाटक में बार-बार व्यवहृत हुई है। इस पद्धति की चरम सीमा है, 'याय' और 'वय' दृश्य में अर्थात् पूरे नीचे और दसवें अंक में—समान रूप में। मंच पर अनेक धरातलोंवाली प्रदर्शन-पद्धति इसी रंग पद्धति का एकमात्र फल है।

अनेक, विविध धरातली मंच की एक अर्थ बात भी यहाँ उल्लेखनीय है। यह धरातली मंच बात की अपेक्षा स्थान में अधिक सम्पन्न है। जग 'मृच्छकटिकम्' के चौथे अंक में जहाँ एक घर (धरातल पर) व्यक्तमना विद्वत् की से



मुकुट के माथ



संस्कृत रंगमंच प्रस्तुतिकरण पक्ष पूव रंग, सूत्रधार
इन्द्रध्वज हाथ में लिया सडा है। नीचे नट नटी पूजा



भारत के मध्यम व्यापार



भारत में परम्परा के साथ मधोव की वन भगा । मधोव के

दग्वती हुई 'गावलिक' और मन्त्रिका की गुप्त बात सुनती रहती है। समय स्वभावतः बीतना जा रहा है और वह स्वगत वचन—'वल्कि जनातिक' में उनकी बातों पर अपनी टिप्पणी भी देती है—इस तरह इस दृश्य में कोई विराम नहीं आता, कोई अस्वाभाविक टहराव नहीं आता—जैसे कि उसके पहले अंक में आया है। जबकि समय बीच में बीत गया है, पर चारुत्त और विद्रुपक की बातों में 'काल' का कोई व्यवधान नहीं दिखता।

मंच का, अभिनय-क्षेत्र (रंगपीठ) का अलग अलग स्वतंत्र भागों में बाँटकर नाटक का प्रदर्शन करना भी इस प्रयोग में एक और तत्त्व है। जैसा 'मृच्छकटिक' में 'याप' दृश्य में मंच का एक भाग 'यापालय' है, और दूसरा भाग चारुत्त का घर। टीका 'मौ तरह वचनमना का चारुत्त की पानी की सूचना मिलती हो वह कुछ ही क्षणों में समान भूमि पर (दृश्य में) पहुँच जाती है। और (पहले अंक की परिकल्पित) मिट्टी से उस समवे अंक में—जबकि चारुत्त भीड़ के साथ समान भूमि में ले जाया जा रहा है स्थावरक उसी बीच कूद पड़ता है।

अदृश्य और नपथ्य

संस्कृत नाट्य प्रदर्शन में और इसकी रचना-पद्धति में दग्व जितना प्रत्यक्ष दग्वता और सुनता है उममें वही अधिक उस अदृश्य में देखना और नपथ्य से सुनना होता है। इसी सद्म में 'कान में कहना', 'अस्पृष्ट स्वर' में कथन यह भी महत्वपूर्ण है जिस दग्व-वग सुन नहीं पाता, पर समझता खूब है। क्योंकि दग्व नाटक के विषय में, चरित्र के बारे में सारी अप्रतिष्ठ सूचनाएँ और अन्य प्रसंग प्राप्त कर चुका होता है।

मंच हर अदृश्य तत्त्व में अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है। समभवतः इसी लिये संस्कृत-नाट्य में बहुत कुछ नपथ्य में घटता है और पूरा होता है। पर्दे के पीछे बितना होता है यह जीवन-दग्व की भी बात है, पर प्रदर्शन-सद्म में 'रंग' का यही नपथ्य तत्त्व असीम क्षेत्र और बाध देता है। मन कल्पना करने लगता है और इसी में उसकी अवधारणा प्रकट होना लगती है।

इसी मसीम और विस्तार के हतु इसी अवधारणा के लिये चरित्र प्रवृत्ति का पूरा ही दग्व को सुनायी देने लगता है। अर्थात् संस्कृत नाटक का चरित्र भौतिक रूप से प्रकट होने के पूरा मानसिक रूप में दिखाई पड़ता है। उसकी आत्मा—उसका प्राण उसका गरीर में घाग बड़ जाता है।

मूर्छा

संस्कृत नाटक में, विशेषकर इसके प्रदर्शन-तत्त्वों में जहाँ भाव सम्प्रेषणीयता के स्तर पर कठोर समय की अपेक्षा पड़ती है वहाँ गहन भावुकता के क्षणों में परम निबलता भी प्रकट होनी है। समय और भावुकता दो-दोनों का अजब बलात्मक समय है यहाँ। मूर्छा इसी का एक उदाहरण है। प्रदर्शन के तत्त्वों में जहाँ नृत्य, मुद्रा, चरण और अभिनय प्रमुख हैं, वहाँ भावुकता के क्षणों का अभिनय विशेष गहन है।

मूर्छा जीवन की अपेक्षा संस्कृत-नाट्य में अधिक पाई जाती है। मूर्छा प्रायः सभी श्रेष्ठ नाटकों में विद्यमान है। भास, 'तूद्रक' कालिदास और भवभूति में विशेषकर। 'मृच्छकटिकम्' में चारुदत्त के घामुपेक्षा की चान्ची हो जाती है इसकी सूचना में वह मूर्छित होना है। यही सूचना जब वसन्तसेना को मिलती है तो वह भी मूर्छित हो उठती है—साथ ही उसकी दासी मदनिका भी।

'उत्तररामचरितम्' में मूर्छा दृश्य उपक्रमों की चरम सीमा के रूप में बहुत ही कलात्मक ढंग से व्यवहृत हुआ है। इस तरह संसलह स्थल हैं मूर्छा के उत्तर रामचरितम् में—सीता सात बार, राम चार बार, उनके सबके नौ बार, कौटल्या एक बार सीता की मा वृन्दी एक बार और एक बार पूरी सेना की मूर्छा।

वस्तुतः मूर्छा आत्मा के ही लिये नहीं बल्कि यह मन प्राण के लिये भी एक दृश्य है। मूर्छा की स्थिति स्वभावतः बड़ा आती है जहाँ शब्द और वाय अपनी सीमा में घुस रहे जाते हैं और उनकी जगह को जहाँ अभिनय और नृत्य रचना के ये तत्त्व पूरे करते हैं।

संस्कृत रगमच जहाँ एक और गहन काव्य तत्त्वों से परिपूर्ण था वहाँ यह नृत्य रचना के कला-तत्त्वों से रचित था। शब्दों और नयन इन दोनों शक्तिमा, और कृतिमा का आनन्द देना चाहता।

नाट्य प्रदर्शन का आदि और अंत पूजा के क्षण हैं—प्रायना के स्वर से पूर्ण सम्पूर्ण 'नाट्य' को एक आध्यात्मिक स्तर—रूप देना चाहता। मंच के अभिनयों निरंतर सूत्रधार रग गीतली, दण्ड वादक, गायक, नर्तक और दृश्य अदृश्य सभी गतिमा अंत में एकाकार हो प्रायना करती हैं—सबके धुम के लिये मंच की शक्ति, कल्याण और आनन्द के लिये।

नाटक तथा अभिनय

संस्कृत नाट्य गद्य में नृत्य और नाटक दोनों ही भाव समाविष्ट हैं।

और नाटक की प्रस्तुतिकरण कला में संगीत नृत्य काय व्यापार और कविता इन सबका समन्वित अवतरण नाटक की उपस्थापन-कला है।

प्राचीन अभिनय का मूलाधार रूप नट शब्द में व्यजित है। नट शब्द का अर्थ उस काल में व्यायाम है और दैनिक साहित्य में हमें इससे अत्येष्टि किया के नृत्य तथा नाटक से सम्बद्ध होने के प्रमाण भी उपलब्ध होत है। डॉक्टर राघवन का इस सम्बन्ध में यह विचार है कि दाह क्रिया विधियों की समाप्ति पर हमारे पूज्य नृत्य अथवा गारोरिक व्यायाम तथा नृत्य और हास द्वारा मनोरंजन करत थे। इसकी साक्ष्य में उन्होंने वाली देश के नाटकों के अभिनय काल की प्रस्तुति किया है। वाली में नाटकों का अभिनय उस ऋतु में किया जाता है जब पूवजों की आत्माओं का उनके पूर्व शृंगों में आने का अनुमान होता है। ऐसे अवसरों पर गारोरिक व्यायाम कुश्ती तथा अस्ति चालन आदि के प्रदर्शन हुआ करत थे।

इसी सदन में अभिनय के स्तर पर भरत ने अनुकरण के अनेक संस्थानों गतियाँ एवं काय प्रणालियाँ में एक सौ भाठ गिनाये हैं, जिनमें से अनेक नट विषयक प्रवृत्ति के हैं और उनका मंच पर अनुष्ठान अति कठिन है। कुछ वे हैं जिन्हें वृत्तियाँ याय अथवा प्रतिकार कहते हैं और कुछ शस्त्र ग्रहण तथा संचालन की विधियाँ एवं गतियाँ तथा पूर्वाभिनय के स्थानों का संकेत करते हैं।

अतः यह स्पष्ट है कि 'नट' (इसी प्रकार 'रंग' शब्द भी) ग्रीका क्षेत्र तथा नाटकीय रंगमंच दोनों के लिये है।

प्राचीन नाटक के चार तत्त्व हैं—जिन्हें नाट्यांग भी कहते हैं

- पाठ्य
- रीति
- अभिनय
- रस

(मंच) नाटक में इन्हें उपस्थापित करने के लिये चार व्यापार होते हैं जिन्हें वृत्तियाँ कहते हैं। ये व्यापार निम्न ही अभिनय अथवा अभिनेताओं के व्यापार हैं।

- भारती
- सात्वती
- आरभटी
- कोनिकी।

इन चारों वृत्तियों में भारती वृत्ति सर्वप्रमुख है। भारती मुख्यतः अभिव्यजना की मौखिक प्रणाली का नाम है। नाटक में वे सभी स्थल जहाँ वयोपकथन प्रमुख होता है और नाटक के वे समस्त निदधान जो एक मात्र मौखिक माध्यम

सं विकसित होने है, इसी भारतीय वृत्ति का उद्भावक होने है। भग्न द्वारा वर्णित इस प्रकार के रङ्गका मे स तीन का सम्बन्ध इस भौतिक समूह में ही है—

स्वगत भाषण जिसे 'भाषण' कहते हैं 'प्रहसन' और बोली जिनमें ग व्यक्तियाँ का 'शाब्दिक वागमिनय' रहता है। इस प्रकार 'भारती' वाली क व्यापार को—अर्थात् वाली का अभिनय कहने है।

'सात्वती' मानसिक व्यापार के अभिनय का कहते हैं। नाट्य धर्मों परम्परा क नाटक तथा उनके उपस्थापन में इस वृत्ति का महत्व अत्यधिक है।

'कौणिकी' नवन का कहते हैं—विशुद्ध वृत्त्य 'पापार'।

प्राचीन नाटक के अभिनय में इस 'कौणिकी वृत्ति' को भरत ने सबसे उँचा स्थान दिया है। कहा है, कि जब ब्रह्मा ने इस पंचम ब्रह्म (नाट्य-शास्त्र) को अपने ती भूत पुत्रों का 'नाट्य' करने के लिये उपदेश दिया तब वह फिर भी सफल नहीं हुआ। तब ब्रह्मा ने चौथीस अप्सराओं को ज म दिया फिर वह नाट्य 'कौणिकी' वृत्ति की पूर्णता में सफल हुआ।

विशुद्ध उपस्थापन की दृष्टि से संस्कृत नाटक में दृष्टात्मक विधा इतना नहीं हुआ करता था—जितना आज प्राधुनिक रगमच पर है। रगमचीय तत्वा का योग निश्चय ही कम से कम था। इसकी पूर्ति संस्कृत रगमच में आंतरिक काय स्रोतों के स्तर से हाथी थी जो स्वयं उस रगमच की कला की श्रष्टता प्रदान करते थे।

नाट्य परिस्थिति को भाषण, कथापकथन तथा गीतों द्वारा सम्प्रेषित किया जाता था। कथावस्तु का विकास नम का लिये जितना आगार छोटे छोटे रग काय और मच-व्यापार होता थे, (इनकी स्थापना नाट्यकार के सक्षिप्त मच निर्देशों के आगार में जिह परिक्रमा कहते हैं) इनकी प्रतिष्ठा उत्कृष्ट अभि नय से होती थी। संस्कृत रगमच में यह निर्देश कदा विभाग नामक रग रूडि में सम्बद्ध है। इसके अनुसार मच का कुछ भाग पर्वत नदी उद्यान, राज-पथ आदि के प्रतिनिधि दृश्य रूप समझे जान थे। अभिनेता नाटक विकास पक्ष पर इन परिकल्पित कथाओं में परिवर्तन करने सहज ही यह मनभावन करा देता था कि पात्र अपनी उद्देश्य के लिये सगु भर में वहाँ से वहाँ चला गया। इसके गाय निश्चय ही संगीत कायम कथोपकथा का योग रहता था।

इसी प्रकार मच पर अद्व दित्त, रथ आदि नहीं लाये जाते थे बल्कि उसका लिये आधिक अभिनय तथा चित्राभिनय द्वारा उपयुक्त कलात्मक रग विनयों की जाती थी जो आश्चर्यजनक सफल प्रभाव उत्पन्न करती थी। इस तरह की

रंग क्रियाया तथा अभिनय गली के पीछे दशक के मन में कल्पना वृत्ति के उदय तथा उसके आधार से रस भावना का दर्शन छिपा हुआ था। तभी संस्कृत रंगमंच के दशक को रंगरत्न और रसरत्न कहा गया है। स्वाभावतः आंगिक अभिनय द्वारा अभिनयता अथवा रस पर चढ़कर उनका संचालन कर सकता था। मंच के उद्घाटन में पुष्प और पौधों का जल से सींच सकता था मोटा बिहार कर सकता था। गन्तुन्तना आदि संस्कृत की श्रुत नाट्य कृतियाँ में विभिन्न काय-व्यापार के लिए तभी नाट्येन भवतारयति रंग निर्देश हुआ है। दुष्यंत के रस छोड़ और उसका वन प्रस्तुत करने के लिए विमुक्त नट मुद्रा से रथवग सूचयित्वा करना है। तभी प्रकार गन्तुन्तला द्वारा वृक्ष का सींचना वास्तविक सिंचन न हाकर वृक्ष सींचन नाट्ययति है। इसका रहस्य है रसनिष्ठ का उद्देश्य। मुद्राया नृत्यवत् गतियाँ संगीतमय कातावरण कलात्मक संकेतों से दर्शकों में घनी कल्पना जागती है। उनमें स्वयं एसी सज्जनता और प्रक्षणीयता उत्पन्न होती है कि वे नाटक के साथ परिपूर्ण होकर सचमुच रंगरत्न हो जाते हैं।

किन्तु अभिनय और उपस्थापन की यह गौरी विशेषकर नाट्यधर्मों नाटक के लिए है। इनमें विभिन्न प्रकार के लिए जिसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण मृच्छकटिकम् है अभिनय और उपस्थापन की गौरी यहाँ दूसरी कोटि की है। क्योंकि नाटक और प्रदर्शन की नाट्य प्रमिताओं में कुछ अन्तर है। इन प्रमग में संस्कृत रंगमंच की वही दा प्रतिलिपि नाट्य प्रमिताय नाट्यधर्मों और गौरीधर्मों अति उत्तमनीय हैं। संस्कृत संस्कृत के समस्त प्रतिलिपि नाटक नाट्य धर्मों छिपा के हैं उदाहरण हैं और उनमें गान्तुन्तलम सबश्रेष्ठ है। नाट्य गान्तुन्तल का अभिनय विधियाँ का अध्याय (३६ वाँ) इहीं नाट्य धर्मों छिपा का अध्याय है। निम्न ही जिस नाट्य धर्मिता की नाट्य कृति होगी स्वभावतः उपस्थापक की उत्ती गौरी में नाटक का सारा अनुष्ठान करना होगा। अथवा यदि इतिवृत्त लोक विख्यात है विषय उदात्त प्रेम है का नाट्य अथवा प्रसिद्ध राज पुत्र है रस शृंगार है तो मंच-सज्जा रंगमंच से लेकर अभिनय गली तक सारी उपस्थापना संगीत नृत्यवत् गतियाँ कलात्मक गतिमाया और काव्यमय स्थितियाँ के निर्माण के ही भीतर का जाती है। उपस्थापन की यह गौरी और अभिनय का आंगिक रूप कलात्मक संचार नृत्यवत् गतियाँ सदाशय में नाट्यधर्मों परम्परा के अनुबन्ध है।

और यदि नाट्य कृति प्रकरण है—अर्थात् यदि उसकी नया कथ्य विषय सामाजिक है चरित्र यथावत् समाज से नियत है उसमें विभिन्न सामाजिक चरित्रों के अनुबन्ध विभिन्न भाषाय बोलियाँ—स्वभावभिनयोपेत नानास्त्री पुरुषाश्रयम् यन्त्रोद्गम भवनात्म्य लोकधर्मों तु ना स्मृता हैं धटनार्थ—काय

व्यापार अधिक हैं तो यह सब अपने प्रस्तुतिकरण के लिये अनुकरणवादी शैली की अपेक्षा करती है—और यही संक्षेप में 'लाक्षर्मी' परम्परा के अन्तर्गत है। अर्थात् इस प्रवरण के उपस्थापन में नवस, अभिनय अधिक होगा, मुद्राओं, नृत्यवत गतियाँ और कलात्मक सवता का अपेक्षाकृत अभाव होगा। जो सत्य, नाट्य स्थिति में इस प्रकार नाट्यधर्मी में अभिनय, मुद्रा और कलागत प्रतीक और संकेत में व्यक्त किया जायेगा वही लोकधर्मी में यथावत् वस्तु अथवा उसकी नकल में प्रस्तुत होगा। उदाहरण के लिये 'मृच्छकटिकम्' में वास्तविक गाड़ी की नकल की अपेक्षा है, जबकि 'गोशुन्तलम्' में दुष्यन्त के रथ, उसके वग के लिये मात्र अभिनय की थोड़ी मुद्रायें और गतियाँ आवश्यक हैं।

इस प्रकार 'गोशुन्तलम्' का अभिनय वाचित्र और आंगिक अभिनय तथा कथाविभाग से संयुक्त मंच पर अपने देश-जान और परिस्थिति तथा उसके मंच रूप का पूर्ण वाच प्रेक्षक को कराता है। ठीक मूल शेषमपिचर मंचरूप की भाँति दर्शक की कल्पना शक्ति जगावाला।

अभिनय के इस विगुड कलात्मक रूप के अतिरिक्त रगपीठ पर पदों अथवा रुढ़ियाँ द्वारा विभिन्न कथा अथवा कोष्ठकाँ का जो निर्माण होता था, उसमें इसी नाट्यधर्मी अभिनय 'गो' से उन विभिन्न कोष्ठकाँ—अर्थात् देश-स्थान का वाच का-वाचक गति प्रचार में उनके अनुरूप स्थापित' किये होता है। जैसे 'गोशुन्तलम्' के प्रथम अंक में एक ही रगपीठ पर वही एक और रथ पर चढ़े हुए दुष्यन्त का मृग का पीछा करना और वही गति प्रचार में कण्व जूषि के आश्रम में पहुँच जाना, फिर वही से आगे 'गोशुन्तलम्' का उपरान्त का पीछा की सींचते पा जाता। इसी प्रकार 'मृच्छकटिकम्' के दशम अंक के नाट्य-व्यापार और रग-स्थान की उपस्थापना के लिये यही अभिनय अपेक्षित है। समूचे सत्कृत नाट्य-साहित्य में मृच्छकटिकम् में नाट्य धर्मी और लोक धर्मी दोनों परम्पराओं का समन्वय है। फिर 'मृच्छकटिकम्' के चौथे अंक में चेटी और विद्रूपक के अनुक्रम में, जहाँ वसन्तमेना के विशाल भवन में चेटी विद्रूपक की क्रम-प्रथम काण्टा (कथाविभाग) से आठ कोष्ठकाँ तथा उसे एक ही रगपीठ पर प्रवेश कराती हुई उसे भवन की सारी गोमा दिखाती हुई ले आती है।

रगमच का अभिनय पक्ष

सत्कृत रगमच का मारा बन उसके अभिनय पक्ष पर है। अभिनय के

माध्यम से मचबोय, देश काल परिस्थिति का अभिमान तथा उन्ही के सहारे रंगका को नाटक के पात्रों तथा भावों से साधारणीकरण का काम उह परि स्फितकर कल्पना-लोक में ले जाने का घम—इतनी मर्यादा है मस्कृत रंग मच अभिनय की। कारण यह कि मस्कृत नाटक और रंगमच का चरम उद्देश्य था दर्शकों का लोकोत्तर आनंद देना, अर्थात् रमानुभूति कराने का घम।

आधुनिक रंगमच की अभिनय-कला के केवल तीन माध्यम हैं

○ वाणी वाक्शक्ति

○ गति प्रचार

○ मुद्रा

पर मस्कृत रंगमच में अभिनय की मर्यादा, व्यापकता और गहराई की दृष्टि से अनुपम और अनुपम है।

पश्चिम में प्राप्त आधुनिक रंगमच में 'अनुकरण' के आधार पर केवल अनु करणमूलक अभिनय-स्तर को साग प्राप्त कर सके हैं। किन्तु भारत में 'रस सिद्धान्त' के स्तर से भरत न कहा है 'आत्माभिनयन भावों' (२६ ३६) आत्मा का अभिनय भाव है। 'भाव' ही आत्म चेतन में विश्रान्ति पा जाने पर 'रस' होते हैं। ठीक इसी विपरीत प्लटो ने अभिनय को अनुकरणमूलक मानते हुए अभिनेता में स्वभावतः चरित्र हीनता आदि सीमाओं को स्वीकार किया है—कथार्थ के क्षण क्षण में अनुकरण-गील होते हैं। सत्य को नहीं ग्रहण कर पाते। इसी के आधार पर आधुनिक रंगमच में 'एक्टिंग' है—पात्रों के अनुरूप काम करना। हमारे यहाँ अभिनय है—मन के भावा में अनुभूत करानेवाला। नभी इसका रूप विस्तार बाहर से अधिक भीतर उतारने वाला है, और मानव मन और प्रकृति की समस्त वृत्तियाँ और रीनियाँ को समेटकर लाने वाला है।

नाट्य शास्त्र में अभिनय शास्त्र की मर्यादा और नियमों के प्रतिपादन में आठवें अध्याय से लेकर उन्नीसवें अध्याय तक कुल बारह अध्याय हैं। वस्तुतः इसी में मस्कृत रंगमच में अभिनय की विराटता का अनुमान लग जाता है। आठवें अध्याय में आगिक, वाचिक, आत्मिक और सात्त्विक अभिनयों का पूरा शास्त्र दिया गया है। इसमें दृष्टि अभिनय के ऊपर भरत न जितना मार्मिक बर्णन दिया है, वह अद्वितीय है। दृष्टि का अभिनय की आत्मा माना है। नवें अध्याय में हस्ताभिनय (उपागमाभिनय) का बर्णन, चरणा (पाद, जपा, उरु और वृत्ति) के द्वारा आभिनय सम्भव है, उह 'चारी' कहा जाता है। ग्यारहवें अध्याय का नाम 'महल विधान' है। गारिया के मर्याद में विविध महल की उत्पत्ति

होती है। बारहवें अध्याय में गति प्रचार का शास्त्र है। किस रस के नाटक में किस प्रकार की गति हानी चाहिये किस प्रकार की प्रवृत्ति के अनुकूल कसी गति हो—रस प्रकार विभिन्न गति भेदा प्रकार का यहाँ उल्लेख है। फिर स्त्री पुरुष के बैठन उठने की भी अभिनय विधि बतायी जाती है। चौदह से लेकर उन्नीसवें अध्याय तक वाचिक अभिनय का बखान है। निदचय ही यह भारतीय नाट्य अभिनय-कला का अदम्य विराट भंडार है।

पर इस विराट अभिनय शास्त्र का व्यवहार उस काल में रगमच में क्या था—यह आज मूल प्रश्न है। वस्तुतः इसका व्यवहार बिना अथवा इस अभिनय शास्त्र का मूल बिना सृष्टिनाट्य कृतियों में स्पष्टतः उपलब्ध है। रगमच के विद्यार्थी के लिये सस्कृत रगमच की अभिनय-कला, नाट्य कृतियों में जस सजीव चित्रा की तरह बाधकर रखी गयी है। इस सदन में सस्कृत नाट्य को उसका रगमच की दृष्टि में पढ़कर ऐसा लगता है कि नाट्य कृति रूपी समुद्र में उसका व्यावहारिक रगमच उसमें परिचापित अतलफाला विंगल पर्वत की भांति है जिसका जल गिर पानी के ऊपर दीप्त पड़ता है जेप उसी अतस्तल में रम मग्न रहता है। और इस मूल अभिनय-ज्ञान में कानिदास की सरस लवनी सर्वांगिक बलवती है।

मालविकाग्निमित्र में दो रग आचार्यों के बीच अपनी प्रेमी कला चानुरा के सम्प्रदाय में लनातनी हानी है। फिर यह निष्पत्ति होता है कि दाना की अभिनिर्दिष्ट अपनी अभिनय-कला का विचार। ता भूय बल उठता है। प्रकाश में दानागण बल चुक है। यह पत्र निश्चित हो गया कि कलित अभिनय ही होगा जिसमें अभिनय पात्र की भूमिका में उतरकर मनोभाव—पक्षिण का अभिनय करे। इसने लिये पढ़ने मालविका। यान प्रारम्भ किया। हय मम यह था कि दुर्लभ जन के प्रति प्रमदपरवशा प्रमिता का चित्त एक बार पीन स भर उठता है बहुत दिना के बाद फिर उसी प्रियतम को देखकर उसी की ओर वह आल बिठाय है। भाव मानविका के सीधे हृदय में निगल के कण्ठ उसका करण था। उसके अनुलनीय सौन्दर्य अभिनय-व्यजित अग सौष्ठव श्रुत्य की अभिराम भगिमा और बल के मधुर संगीत में राजा और प्रेक्षकगण सत्र मात्र मुग्ध हो गये। इस अभिनय के बाद ही जब मालविका पत्र की ओर जान लगी, ता विदूषक ने कहा वहान उस रोका—यह ठिठकर गढी हो गयी (अतः उसकी अभिनय-मुद्रा गति प्रचार और सम्पूर्ण अभिनय का मजीब चित्र देखिये)। उसका वाया हाथ बटिदेन पर वियस्त था जेना करण कला पर मरक आया था, दाहिना हाथ निविल आगलता के समान सीधा भूल पड़ा था। कुना हुई दृष्टि पात्र पर पड़ी हुई थी जहाँ पर के अगूठे फल पर रिद्ध हुए पुष्पा की पीरे पीरे सरवा रह थे और कमनीय दहन्ता श्रुत्य मगी स ईषदुनीन थी—मालविका

ठीर उमी प्रकार यही हुई जिस सौष्ठव के साथ दन् विद्यास करक अभिनयी का रंगभूमि में खड़ा होना उचित था

याम सचिस्तिमितवलय यस्य हस्त नितम्ब,
कुत्सा श्यामविटपि सद्गुण सस्तमुक्त द्वितीयम् ।
पादायुष्मानुलित कुसुमे कुट्टिमे पातिताक्ष,
नत्यादस्या स्थितमतितरां कातमृज्वापतासम् ॥

यह है उस युग के अभिनय का सजीव आत्मा विन । निश्चय ही इस अभिनय कला का मारा गान्धर्व मन्त्र नाट्यगान्धर्व में दिया हुआ है और जो प्रयोग तथा रंगमंच के बिना हृदयगम नहीं हो जाता न जिसे हम आज अपने अपने व्यवहार में ही ला पाते हैं । यहाँ बिना बोले अभिनय का लक्ष्यत्व आज स्पष्ट पकणित है । यहाँ जिस रस का, चरित्र का अभिनय हुआ है वह पूर्ण सफा है । तम यता स्पष्ट है, भाव चेष्टा सजीव और चित्ताकर्षक है ।

अभिनय पद्धति के मूल तत्त्व

मस्कृत रंगमंच में अभिनय का अवलोकन बड़ा ही स्पष्ट और निश्चित रूप में हुआ है । अभिनय का स्पष्ट अर्थ है यही नाट्य प्रयोग द्वारा नाट्य में मुख्य अर्थ को प्रत्यक्ष के हृदय तक सम्प्रपित करना । यह अभिनय किया मूलतः चार प्रकार की वसाहत में है

आंगिक वाचिक, आहारा, सात्विक ।

आंगिक अभिनय का क्षेत्र है शरीर मुख और चेष्टाओं में नाट्य स्थितियों का अर्थ व्यक्त करना । इन तीनों में अष्टाङ्ग अभिनय बहुत ही महत्वपूर्ण है । अष्टाङ्ग—अर्थात् पूरे शरीर की किसी विशेष चेष्टा से भाव से अनुभूति से किया जानवाला अभिनय । इसका अन्तर्गत मिर कटि पाय वगैरा पात्र और चरण इन छः अंगों के अभिनय आते हैं । तथा कथा, बोल पीठ उदर, उर, जघन इन छः अंगों के अभिनय का भाग है । और आंग भौंह, नाक भ्रमर, वंश और ठोनी इन छः उपकरण अभिनय क्रियाय लाती हैं ।

इस तरह से अभिनय का तीन प्रविधाय होती हैं जिन्हें गान्धर्व और अक्षुर कहते हैं । इनमें से आंगिक अभिनय तो गान्धर्व कहलाता है । सूचना को अक्षुर कहते हैं, और अगस्त्य में युक्त वर्ण पर आवृत्त अभिनय को श्रुत कहते हैं ।

भरत ने शरीर आंगिक अभिनय में मिर के चारों दृष्टि के छत्तीस आंगों

के तारों के नौ, भौहा क सात नाक के छ कपोल के छ, अघर के छ और ठोड़ी के आठ अभिनय आए है। साविक अभिनय में तरह प्रकार का दाना हाथों का अभिनय चौबीस प्रकार का एक हाथ का अभिनय, चौंसठ प्रकार का हस्त-हस्त का अभिनय और चार प्रकार का हाथ के बरण का अभिनय है। इसके अतिरिक्त नाट्य शास्त्र में भरत ने सोलह भूमिचारियों और सोलह आवाज चारियों का वर्णन किया है। इनमें बाट दस आवाज महल और दस भौम महल के अभिनयों का परिचय देकर गति के अभिनय का विस्तार से उल्लेख किया है कि कौन-सी भूमिका ग्रहण करनेवाले को किस प्रकार से गव पर चलना चाहिए। किस रस में अभि-ता की कसी गति होनी चाहिए। किस जाति आभंग वरण और व्यवसाय वान को कसे मंच पर चलना चाहिए तथा रथ, विमान पर आराटण या अवरोहण तथा आवाजगमन आदि का अभिनय किस गति में करना चाहिए।

जस पश्चिम के देशों में आज विशेषकर लयबान्तिया (क्युडिस्टस) ने अभिनय की रीत के लिए विशेष 'मायाम री विधान' किया है, उससे कहीं अधिक भरत ने अभिनय के लिये 'मायाम रीत्य और आहार' के नियम बताये हैं।

साविक अभिनय का क्षेत्र बचन और वाणी है—अभिनय नाट्य प्रयोग में मुग से आ कुछ कहता है वह सब साविक अभिनय में आता है।

साविक अभिनय उन भावों का वास्तविक और दार्शनिक अभिनय कहलाता है जिन्हें रस मिद्वान्तवाणी साविक भाव कहते हैं।

आहार्य अभिनय वास्तव में बहने सम्बन्धी नियमों के अभिनय है। वह भूषा भूमिका को प्रकट करने में जितनी सहायक होती है उससे भी अधिक इसमें अभिनय में सम्पूर्णता आती है, तथा परम्परा के लिये यही मूलधार निश्चि हाता है।

महल और गति

'रिचम' र 'गुणि' के सम्पूर्ण अर्थ में महल कहा जाता। महल का अभिनय अर्थ है यही शरीर की मुद्रा। इस और भी स्पष्ट रूप में जानने के लिये 'चारी', 'वरण' को पहन जानना चाहिए। अर्थात् पर जघा और बटि इनकी समान रूप में चपटा को चारी कहते हैं। इसी चारी का व्यायाम भी करते हैं। एक पर के प्रचार को चारी गीता परा के प्रचार को बरण तथा तीन वरणों के एक साथ प्रयोग का 'पड और तीन चार पडा' को मिलाकर एक महल का प्रयोग होता है।

ये मंडल दो प्रकार के होते हैं भूमिगत और आकाशगत । भरत ने मंडल और चारी के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के पात्रों के प्रवेश तथा उनके चरने की रीति अर्थात् गति को भी बहुत विस्तार से बताया है ।

गति प्रचार को कई रूपां में बाटकर देखा गया है जैसे लयगति, 'रसानुसारी गति' विद्रूपक और स्त्री की गति आदि ।

करण, अंगहार और रेचक

विभिन्न अंग और प्रत्यंगा की अभिनय मुद्राओं के मेल से 'करण' बनते हैं और अनेक करणों के मेल से अंगहार बनते हैं ।

स्थानक (जड़े होने की स्थिति), चारी तथा वृत्तहस्त के मेल से करण बनता है । अर्थात् हाथ और पैर की विभिन्न गतियों के मेल से नृत्य में करण बनता है । किसी भी एक अभिनय क्रिया में मुख्यतः दो करण होते हैं, और ऐसे तीन या चार करणों से अंगहार बनता है । करण में अभिनेता का शरीर एक ही निश्चित स्थिति में रहता है किन्तु अंगहार में निरंतर स्थानक का परिवर्तन होता रहता है ।

नाटक शास्त्र में ऐसे करण एक सौ आठ गिनाये गये हैं तथा अंगहार बत्तीस ।

दर्शक

नाट्य मिथिया के प्रसंग में भरत ने नाट्य शास्त्र के सत्तारम्भ अध्याय में दशका अर्थात् प्रेक्षका के सम्बन्ध में विस्तार में बताया है। सबसे पहले प्रेक्षकों के गुणों की सूची दी है। यद्यपि भरत ने प्राग्भूमि में ही यह बताया है कि यह नाटक (नाट्यक) मर्त्य लिये है। मर्त्य वस्तुओं के लिये यह दानीय है। किन्तु फिर भी प्रेक्षक के कुछ मूलगुण होने चाहियें। प्रदशन आनन्द के लिये व गुण मर्यादा अनिवार्य हैं।

१—जो व्यक्ति ठीक इन्द्रियावाला हो, प्रत्यक्ष बान भाव और विचार को उचित रूप में ग्रहण करनेवाला हो, दोषरहित हो, अनुगता हो, वही प्रेक्षक हो सकता है।

२—सतार के अवसर पर सतुष्ट हो, गाँव से गोकाचित शेष में श्रद्धा और भय में भयभीत, वही श्रेष्ठ प्रेक्षक है।

इन मूल गुणों के अतिरिक्त, दण्ड के विषय में विशेषकर उसकी भावगत विशेषताओं के बारे में भरत ने बड़े विस्तार से लिखा है। तथा दण्ड की सहृदयता पर बहुत आग्रह किया है। इसका मूल कारण यह है कि दण्ड ही तो रगमच के सम्पूर्ण व्यापार में भावमग्न होनेवाला या भावानुभूति करनेवाला है। अभिनेता मंच पर नाटक को प्रस्तुत कर उसके मूलभाव की रचना करता है तथा दण्ड उस साक्षान् ग्रहण करता है। इसी लिये मस्कृत रगमच में दण्ड को 'रसगजक' कहा गया है।

यह रस रजक दण्ड नाटक के प्रस्तुतिकरण से तभी उस आनन्द का पा सकता है जब रस निष्पत्ति की पूरी सामग्री विद्यमान हो, और वह अपनी पूर्ण अन्विति को प्राप्त कर सके। इस प्रसंग में प्रेक्षक की रचि और उसका सौन्दर्य बोध बहुत ही महत्वपूर्ण है। यही वह सत्य है जहाँ से दण्ड अपने युग के रगमच तथा शास्त्र रचने का प्रभावित करता है। मस्कृत रगमच में वाच्य-मार्ग के पीछे उस युग का दण्ड की मनावृत्ति और उसका सौन्दर्य-बोध धारता है। श्रेष्ठ नाट्यकार प्रेक्षक की रचि और उसका सौन्दर्य बोध का विकसित भी करता है। तब तो तभी सम्भव है जब नाट्यकार मंच प्रयोग और दण्ड के तीनों आयाम परस्पर सर्गित हो, तथा एक दूसरे से विश्वम्भ हो। इन तीनों आयामों में से यदि दण्ड रगमच से दूर रहा तो रगमच का हानि निश्चित है।

रंगमवन—प्रेक्षागृह

भरत ने नाट्यशास्त्र के द्वितीय अध्याय में तीन प्रकार के प्रेक्षागृहों का विधान बनाया है—'विकृष्ट' (सम्भा आयताकार) चतुरस्र, (वर्गाकार) और 'अस्र' (त्रिकोना) ।

य तीनो प्रकार के प्रेक्षागृह तीन तीन परिमाण के होने थे—'ज्येष्ठ', 'मध्यम' और 'वनिष्ठ' (वनिष्ठ) । इस प्रकार कुल नौ प्रकार और परिमाण के प्रेक्षागृह के विधान हुए—जो हाथ की नाप के अनुसार निम्नलिखित हैं

१—विकृष्ट ज्येष्ठ प्रेक्षागृह	१०८ × ५४ हाथ
" मध्यम ,	६४ × ३२ ,
" वनिष्ठ "	३२ × १६
२—चतुरस्र ज्येष्ठ प्रेक्षागृह	१०८ × १०८ हाथ
" मध्यम "	६४ × ६४ "
" वनिष्ठ ,	३२ × ३२ "
३—अस्र ज्येष्ठ प्रेक्षागृह	१०८ हाथ सम्भा
" मध्यम ,	६४ "
" वनिष्ठ ,	३२ ,

इस नाप के अनुसार चौंसठ हाथ (६६ फुट) लम्बा और बत्तीस हाथ (४८ फुट) चौड़ा विकृष्ट मध्यम प्रेक्षागृह ही सर्वे लोका के लिये बनाना चाहिये । इससे बड़े प्रेक्षागृह में नाट्य का रस नहीं मिलता ।

प्रथम प्रेक्षागृह दक्षिणाग्र के लिये है । दूसरा विकृष्ट मध्यम चतुरस्र के लिये उत्तम और प्राग्ग माना गया है । सब कुछ ध्यान में रखकर, सब प्रकार के प्रेक्षागृहों में मध्यम ही अच्छा है, क्योंकि इसमें पाठक और अभिनय अधिक पूर्ण रूप में गुनायी और दिखाई पड़ता है ।

वस्तुतः इसी दूसरे प्रकार के नाट्यगृह का ही वर्णन नाट्यशास्त्र में आदित्य मानव्य अधिक विस्तार के साथ किया गया है । इसमें समग्र भूमि को दो भागों में बाँट दिया जाना था एक भाग रंगभूमि (स्टेज) और दूसरा भाग प्रेक्षक भूमि दर्शना के बैठने के लिये (भाज के आसीटोरियम के अर्थ में) । यहाँ पर

मुलभद्र भवेद युक्त वदिका मत्तवारण ।

क्षेत्र भागोदयार्थ भूराभूमिफलकातरम ॥

—राजगृह अध्याय ३०/६

(ऐसी मयवारी या अमारी से वदिका का सामना मुद्रावना हा जाता है जो भूमि के एक छोर ॥ उठकर भूमि ॥ पूर छोर तक के भाग का ढके रह ।)

भारतीय नाट्यप्रणाली में मत्तवारिणी अत्यन्त आवश्यक होती थी । संस्कृत मंच पर एक ही भव, दृश्य में कई स्थला, भूमियां पर अभिनय करना पड़ता था । मंच-काय में जब पात्र बैठता था, मुझे अमुक स्थान जाना है, या मुझे अमुक जगह ल चलौ, तब पात्र मंच की परिधिमा करने मत्तवारिणी में सज, हुए तैयार दृश्य में पहुँच जात थे ।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् का छटा भव इस प्रसंग में उदागनीय है । राजा का माना और उसने पाँछ दा राजपुत्र्य धीवर का माधक्य तात है । राज रा-
द्वार पर पहुँचन के लिय धूमते हैं (सर्वे परिजामन्त्रि) फिर सज जाते ह । इस-
बाद सामुमती अप्पग का प्रवेग होता है । इस दृश्य के लिय मंच के दो घरा
तल आवश्यक है । फिर दा दासिया माती है, कधुही माता है । राजा और
विदूषक का प्रवेग होता है । य माधवी मडप में जान के निय धूमत हैं (उभौ
परिजामत) । यह माधवी मडप निश्चय ही एक मत्तवारिणी में बना रहता
है । वहाँ बैठकर शांति में चित्र बनाया जाता है । राजकाय भा पत्र द्वारा दत्ता
जाता था । विदूषक चला जाता है । इतने में विदूषक का भानमाद सुनकर
राजा माधवी मडप से उठ जाता है और सामन की दूसरी ओर की मत्तवारिणी
में घन हुए प्रासाद-दृश्य में जाता है । तभी संस्कृत मंच के रंगशीप पर दोनों
ओर मत्तवारिणी का हाना आवश्यक बताया जाता है ।

भारतीय रगमच इतिहास और परम्परा

भारतीय रगमच—अर्थात् सस्कृत और मध्ययुगीन रगमच का इतिहास और उसकी परम्परा जानने के लिये हम मूलतः इसके नाट्य-साहित्य का अध्ययन से ही रगमच-बोध लेना पड़ेगा। अर्थात् रूपक और नाटक के ही माध्यम से उसकी अवधारणा ग्रहण करनी पड़ेगी। इसका अनिश्चित और कोई महत्वपूर्ण विकल्प नहीं। सस्कृत नाट्य गण्यवनी में अभिनय, रूपक और प्रेक्षक आदि अनेक पारिभाषिक शब्दों के धात्वय और रूढ अर्थ, सस्कृत नाट्य की प्रशसन शली और रगमच प्रकार की ओर निश्चित संकेत करते हैं। इन नाटकों का रग निर्माण में अनेक अभिनय रूपा, तत्त्वा, वायों के जा संकेत मिलते हैं, उनमें सस्कृत रगमच का विधान काफी स्पष्ट हो जाता है।

सस्कृत रगमच का प्रारम्भ

सस्कृत रगमच के प्रारम्भ के विषय में निम्नलिखित धारणाएँ और विचार मिलते हैं

(क) गूढ़ भारतीय परम्परावादी मन, देवी उत्पत्ति में विश्वास करता है। अर्थात् आन्काल में देवताओं का आग्रह पर ब्रह्मा ने नाट्यवर्ण की रचना की। देवताओं का आग्रह था कि किसी ऐसी वस्तु का आविष्कार किया जाय जो आन्क और काल दोनों को सुख दे सकें। इसी आग्रह पर ब्रह्मादेव ने मनुष्य का कल्याण के लिये ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद संक्रमण मंत्र, भावमुद्रा गान और संगीत तथा रग ग्रन्थ करके नाट्य की भाव डाली। गीत और पावती ने उगम ताडक और लास्य मिलाया और विष्णु ने उसमें नाटकीय गैली की दान दी। और भरतमुनि उसको संकर धरती पर लाय।

(ग) दूसरा विचार है कि कठपुतली से सस्कृत रगमच की उत्पत्ति हुई। इसका आधार है 'मूत्रधार' नामक।

(ग) धार्मिक उत्सव—इन्द्रध्वज आदि उत्सवों के समय होनेवाले अभिनयों से ही सस्कृत रगमच का उदय ।

(घ) ऋग्वेद के सवाद-मूकता से ।

(ङ) वैदिक कालीन धार्मिक कमकांड या पौरोहित्य कम से ।

अर्थात् प्रायः सभी पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वान् सस्कृत नाट्य और रगमच का धार्मिक भूमि से उदभव मानते हैं । भक्त प्रोफेसर जागीरदार हैं जिन्होंने इन सार धार्मिक विचारों का खंडनकर, यह बताया कि ग्राम जाति की एक शाखा 'भरत' या 'भूत' से यह कला उदित हुई । ग्राम पुराहिता ने 'भरत' का 'भूत' कहा और नाट्य शास्त्र के अनुसार भरत वं सौ पुत्रों का ब्राह्मणों ने स्थाप भी किया ।

वस्तुतः यह सब-बुद्ध पुराण है । मिय है तथा इसका सम्बन्ध दुनियाँ के सभी देशों के रगमचों के उत्पत्ति से जुड़ा है । किन्तु जहाँ तक वैज्ञानिक दृष्टि का सवाल है, किसी भी समाज में रगमच उसी भूमि से पैदा होता है जो उस युग-काल की सबसे ज्यादा कोमल, बठोर और भाव प्रवण धरती होती है । निश्चय ही सस्कृत रगमच का आदि काल हमारी सभ्यता का वैदिक काल रहा होगा । उस वैदिक भूमि में उसकी चेतना और सामाजिकता में जो घटती सबसे ज्यादा कोमल, बठोर और भाव प्रवण रही, वह भूमि है 'यज्ञ' । इसी यज्ञ के मूल उत्पत्ति से ग्रामों की जहाँ मारो सभ्यता और सस्कृति पैदा हुई स्वभावतः इसी उत्पत्ति से नाट्य और रगमच भी पैदा हुआ । इसी से उसका गायन, वादन और नृत्य उत्पत्ति ।

साम कृष्ण १ में नाट्य-नृत्य, तथा महाशत में होनेवाली नृत्य आदि क्रियाएँ उसी यज्ञ भूमि से ही चारा और उत्पत्ति हुए रग और नाट्य-नृत्य हैं । यज्ञ के साथ ही बालांतर में कमकांड पैदा हुआ और कमकांड के भीतर छिपे हुए सभ्यता दान और कथा-वस्तु का अभिनय और उत्पत्ति द्वारा समाज का सम्प्रेषित करने के लिये निश्चय ही रगमच आया होगा—चाहे वह इन्द्र महासर्व के उत्पत्तिमय क्षण पर चाहे किसी महापुरुष के विवर्णन पर चाहे किसी सामूहिक कृषि की पंचमोषी माधवी रात्रि में—यौन मय की अग्नि और उसके चारा और अभिनय करते हुए लोग और उस परिधि को घेरकर बठा हुआ भार जन-समूह । मानु-सत्ता का यही सौन्दर्य यौन, राग-यौन हमारा आदि रगमच रहा है । उसके बाद आया वह युग जब मानु-सत्ता की जगह प्राणी पितृ-सत्ता । यहाँ से शुरू हुआ नायक ।

इसके बाद आया राजा । राज्य सत्ता, उसका सौन्दर्य-यौन । यही स

शुरू हुआ नाटक का लिखा जाना और उसका राजमहल में, राज भवन में, अन्त पुर में अभिनीत होना । और यही से विकसित हुई सस्कृत-नाट्य की 'नाट्यधर्मी परम्परा'—जिसके कालांतर में नाटककार हुए भास, भस्वधोष, कालिदास और भवभूति ।

यज्ञ की मातृसत्ता की सस्कृति में पनपा हुआ वह 'नाट्य स्वाभावतः कालांतर से लोक-जीवन में प्रजा में फला, और उसी को 'नाट्यधर्मी' के समानान्तर 'लोकधर्मी' की सत्ता प्राप्त हुई ।

सस्कृत रंगमंच में ये दोनों नाट्य परम्परायें 'नाट्यशास्त्र' की मूल धर्मिताय बनी ।

इतिहास और परम्परा

भारतीय रंगमंच का उदय और उससे बहिक सस्कृति (यज्ञ) का अभिन्न सम्बन्ध रहा है, इसका प्रमाण हमें स्वयं नाट्यशास्त्र में मिलता है । पितृसत्ता-युग में मातृसत्ता का यह 'यज्ञ' स्वाभावतः अपने प्रतीक अर्थ में बदल गया । अब वह 'देवासुरसंग्राम,' इन्द्रविजय और महर्द्र विजयोत्सव का अर्थधारी हो गया । क्योंकि नापक (इन्द्र) की कल्पना तब अवश्यभावी बनी और इसी सत्य की प्रति-छाया नाट्यशास्त्र में है । नाट्यप्रदर्शन का प्रारम्भ देवासुर-संग्राम में असुर और दानवों की पराजय का पश्चात् महर्द्र विजयोत्सव के समय हुआ, और इस नाट्यप्रदर्शन से असुर लोग अप्रसन्न हुए, और उन लोगों ने विघ्न करना प्रारम्भ कर दिया । परन्तु इन्द्र ने वही गढ़े हुए अपने ध्वज को उठाकर उससे सारे विघ्नकारी असुरों को नष्ट कर दिया । इसी लिये उस ध्वज को 'जजर' नाम दिया, जेवताम्रो ने (उससे असुरों के शरीर जजर हुए थे) । तभी से सस्कृत नाट्यप्रदर्शन में जजर नामक इन्द्रध्वज रंगमंच में स्थापित किया जाना शुरू हुआ ।^१

बौद्धकाल में या आदि धार्मिक क्रियाया तथा अथ कमकांडो से नाटक और रंगमंच की निश्चित ही स्वतंत्र रूप मिलता । बौद्ध-साहित्य में इस सत्य के अनेक प्रमाण मिलते हैं । बौद्ध ग्रन्था में भिक्षुया का लिय नाटक का प्रदर्शन देखना निषिद्ध था । बुद्ध के पिण्ड्य भौद्गल्यायन और बुक्कया नामक अभिनेत्रों की सम्बन्धना प्रसिद्ध ही है ।

१ आश्वलायन धर्म में 'यूप' (ध्वज, ताम्र जो यज्ञ का समाप्ति का चिह्न था) को प्रायः इन्द्र का वस्त्र कहा गया है—वक्रो यूप—शान० २६/१-२६

संस्कृत नाटक की सवप्रथम रचनायें अश्वघोष की मानी जाती हैं। इनमें एक नाटक 'शारिपुत्र प्रकरण' है, तथा दो रूपक भी हैं। और 'गणिका' प्रकरण में विदूषक का प्रयोग भी है।

अश्वघोष से कालिदास तक आने के पूर्व 'भास' का नाम उल्लेखनीय है। भास के तेरह नाटकों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है

१—रामायण नाटक—'प्रतिमा तथा 'अभिषेक'

२—महाभारत नाटक—'पञ्चरात्र', 'मध्यम व्यायोग', 'दूत वाक्य', 'दूत घटाक्ष', 'कणभार', उरभग तथा वासवदत्त'।

३—अन्य नाटक—'स्वप्नवासवदत्तम्' 'प्रतिज्ञायोग-धरायण' 'मविभारत' 'दरिद्र चारुत्त'।

भास के नाटक मचीय प्रदान के लिये रचित थे, और इनमें सहज-मरल रगमच के सभी तत्त्व प्राप्त होते हैं। संस्कृत 'रग' की मूल रक्तियाँ इनमें मिलती हैं। निश्चय ही कालिदास के लिये भास के नाटकों में वह महत्वपूर्ण पीठिका तयार की, जिसके ऊपर सहज ही कालिदास की नाट्यकला समाहित हो सकी। भास के ये नाटक अपने 'नाट्य और रंगित्य' में ठीक उसी तरह थे जस शेक्सपियर से पूर्व पश्चिम में 'मोरेलिटी' और 'मिरकिल' नाटक थे—बलात्मक बोध से रहित नाटकीय गिल्फ विधान से अश्रीद तथा काव्य की उदात्त महिमा से हीन।

कालिदास ने इन अभावों की सफल पूर्ति अपने नाटकों द्वारा की। संस्कृत रगमच का सम्पूर्ण भावबोध, अवधार्य इनके नाटकों में मिला। काव्य अभिनय, रग इन तीनों तत्वों का अद्भुत सम्मेलन और उत्थप उनके 'अभिज्ञान शाकु-तलम नाटक' में मिला। कथा नायक और रस संस्कृत नाटक के ये तीनों मूल तत्व—यहाँ अपने पूर्ण धाम में प्रकट हुए। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' व 'अतिरिक्त दा अन्य नाटक' कालिदास के और हैं—'मालविकाग्निमित्र' और 'विश्वामोचनीय'।

कालिदास व बाद 'गूढ़क'—जिनका प्रसिद्ध प्रकरण है 'मृच्छकटिकम्', पूरे संस्कृत नाट्य साहित्य और रगमच में यह एक ऐसी रचना है जिसमें संस्कृत रगमच की दाता नाट्य धर्मितायें नाट्यधर्माँ और नायकधर्माँ अद्भुत सफलता व माय एकावार हैं। यही नहीं इनमें संस्कृत व बर्द नाट्यका का सफल धाम है। जस

१—प्रणयकथात्मक—प्रकरण

२—भूत सन्तुल—भाण

३—हास्य मिश्रित—ग्रहमा

रग दृष्टि से मृच्छकटिकम् बहुत ही उच्चरुटि की रचना है। इसमें व्याप्त

कथातत्त्व, घटनाचक्र, काय और उसकी गति और नाट्य-व्यापार इस सत्य को पूर्णरूप से बताते हैं कि सस्कृत रंगमंच की प्रकृति और परम्परा क्या थी। कालिदास और शूद्रक, सस्कृत के ये दो नाट्यकार ऐसे हुए हैं जिनकी कला में सस्कृत रंगमंच की समस्त पद्धतियाँ और धर्मितायें प्रतिष्ठित हुई हैं। विशेषकर शूद्रक ने सस्कृत नाट्य परम्परा में क्रांति भी की। उसने प्रचलित राज-यवग, नायक नायिका को छोड़कर मध्यवग और ययायवोन के चरित्र लिये।

किन्तु शूद्रक की इस नाट्यपरम्परा का आगे विकास न हुआ। आगे कालिदास की ही नाट्यधारा का अनुसरण हुआ। वह भी कालिदास के नाट्य-सिद्धान्त पक्ष पर कृतिगारा ने ज्यादा आग्रह दिया। जिससे उत्तरोत्तर फल यह हुआ कि नाटक अपने सद्धान्तिक पक्ष में पूर्णतः दोषहीन हुए किन्तु उनमें से रंगमंच लुप्त होता गया।

नाटककार हय के नाम से तीन रूपक प्राप्त हैं—‘प्रियदर्शिका,’ रत्नावली’ और नागानन्द। हय की नाट्यकृतियों से प्रकट है कि इनमें काव्यतत्त्व अधिक प्रधान है नाट्य तत्त्व कम।

हय के उपरान्त भट्टनारायण का वणीसहार नाटक है। यह समय सातवीं शताब्दी है। इसी शताब्दी का महत्वपूर्ण नाटककार, विशाखदत्त है—जिसकी प्रसिद्ध रचना है मुद्राराक्षस। इस शताब्दी का यह पहला महत्वपूर्ण नाटक है—जो मूलतः नाट्य प्रदर्शन के लिये लिखा गया था। यही नहीं, इसने अपने समय की सकीर्ण नाट्य-परम्परा और सिद्धान्त के प्रति भी विद्रोह किया। इसने समाज की अपेक्षा राजनीति को अपना विषय बनाया तथा नाटक में सघन तत्त्व की मायता दी।

विशाखदत्त के बाद हम सस्कृत नाट्य-साहित्य के एक और गतिशाली उल्लेखनीय नाटककार—भवभूति को पाते हैं जिसने सस्कृत नाट्य धारा में ‘उत्तररामचरित’ के माध्यम में सबसे एक नयी दृष्टि की अवतारणा की। नाटक के भीतर नाटक—और उसके माध्यम में मनुष्य जीवन की गहन वक्तव्य को रस-बोध देना। भवभूति के तीन नाटक हम उपलब्ध हैं

○ मातलीमाधव

○ महावीरचरित

○ उत्तररामचरित

इन तीनों कृतियों में ‘उत्तररामचरित’ एक महत्वपूर्ण रचना है। इसका नाट्यगित्य बहुत ही मौलिक और महत्वपूर्ण है। चरित्र-मगठन का अपूर्व रूप से गतिशाली है। इस नाटक के व्यापार और कायपक्ष पर सस्कृत काव्य की महती छाया है। फलतः इसका स्वरूप ‘कथा काय की परम्परागत गित्य में सबसे अलग है।

भवभूति के साथ ही सस्कृत नाटक का स्वर्णयुग समाप्त हो जाता है। वैसे भवभूति के बाद सस्कृत में सैकड़ों रूपक लिखे गये, किन्तु सभी सिर्फ नाम मात्र के लिये दृश्यवाच्य सिद्ध हो सके। अनेक रगमच-द्र (जन साधु) ने लगभग सौ रूपकों की रचना की।

वस्तुतः इस अंतिम चरण के लख ऋद्धिवद्ध होकर मूर्खता व वि सिद्ध हो सके। जीवित रगमच त्रिया-वत्साप के अभाव के कारण नाटक की घाग समाप्त हो गई।

इसके अंतिम चरण के नाटककार थे—राजशेखर (६५० ई०), जयदेव (१२५० ई०) इनकी प्रमत्त कृतियाँ हैं 'वासरामायण' और 'प्रसन्नराघव'।

इस तरह मध्ययुग के पूर्वकाल में आते आते सस्कृत नाटक की परम्परा समाप्त हो गई। रगमचोप त्रिया-वत्साप इससे भी पूर्व राख्य हो चुके थे।

वस्तुतः सस्कृत रगमच की अपनी अनेक सीमाएँ थीं। रगमच-ओप के स्तर से सस्कृत नाटका की चेतना सामान्य वग और शास्त्रीयता के बीच से बड़ी। इसका जीवित सम्बन्ध समाज और लोक से उतना नहीं रह सका। समाज और लोक से दूर जाने का एक कारण सस्कृत और प्राकृत इन दोनों भाषाओं की दुरुद्धता भी थी।

धुवक और विशाखदत्त को छोड़कर कालिदासात्तर काल के नाटककार नाटक में अल्प वाच्य के तत्त्व भरने लगे थे।

इस उत्तर काल में नाटक का रगमच केवल श्रव्यता की दृष्टि तथा पाठक की कल्पना शक्ति में ही सीमित हो गया।

बौद्ध और जैन ने रगमच की उही उपेक्षा और निंदा की।

और अन्ततः मध्यकालीन भारत की राजनीतिक स्थिति बड़ी चिन्ता हुई तथा इस्लामी शक्ति ने इसका ह्रास में काफी योग दिया।

ह्रास की वास्तविक स्थिति स्वयं सस्कृत नाटक और रगमच की विशेष प्रवृत्ति और परम्परा में भी छिपी है। यह विशेष सम्राज-ओप और उसके सौंदर्य ओप में सम्मिश्रित होने के कारण प्रमत्त विभिन्न समाज और सौन्दर्यओप के मग में चल सका। वाच्य तत्त्व की अपेक्षा वाच्य-तत्त्व, यथार्थ, की प्रशंसा प्रादुर्भाव तत्त्व, उत्पन्न तत्त्व की अपेक्षा उपदेष्टा तत्त्व, रगमच की अपेक्षा पाठ तत्त्व सस्कृत नाटक की इन सीमाओं में मूलरूप में इसने ह्रास में योग दिया।

मध्यकालीन परम्परा

नवा-सरी गान्धी ॥ सस्कृत नाटक और रगमच की शास्त्रीय परम्परा





राजव रसमव घनिया नाट्य रूप चौदहवी गनाब्दी

नष्ट हो जाने पर मध्ययुग में नाट्य धारा का उद्भव, विकास और उसकी अभिव्यक्ति अनेक नाट्य श्रोता से हुई। ये श्रोत नाटकीय और रगमवीय भी थे तथा साथ ही इनका अधिक रूप अधनाटकीय तथा नाट्येतर भी था।

वस्तुतः इस मध्ययुगीन रगमच क्रियान्वलाप और नाट्य परम्परा का सम्बन्ध सस्कृत रगमच तथा उमकी नाट्य परम्परा में नहीं जोड़ा जा सकता। यह सस्कृत परम्परा से सबथा स्वतन्त्र रूप में पनपा। इसका सबसे बड़ा नागण रहा है—सबथा २१ स्वतन्त्र सांस्कृतिक युग। सस्कृत—हिन्दू युग, और मध्ययुग—मुसलमानी युग। दोनों की दो भाषाएँ, दो स्वतन्त्र युग-बोध। सन एक हजार ईस्वी से पूरुब का युग 'हिन्दू धार्मिकता' का युग कहा जा सकता है, लेकिन सन् एक हजार ईस्वी से बाद का युग अपनी प्रकृति में 'लोकपरक' हो गया। इस लोक परकता में भाषा और सस्कृति के स्तर पर प्राकृत और अपभ्रंश इसकी निशिया हैं। इससे अनिरुद्ध आधुनिक भाषाओं के उद्भव की शक्ति भी।

मध्ययुगीन नाट्य परम्परा का हम दो भागों में बाँटकर देख सकते हैं—

○ लोकधर्मी नाट्य परम्परा।

○ धार्मिक नाट्य परम्परा।

रगमच की परम्परा भवाम रहती है—जब हम इस मत्त को कहते हैं, तो हमारी दृष्टि में रगमच की यह लोकधर्मी परम्परा ही रहती है। वस्तुतः यह कभी नहीं रहती—क्याकि यह लोक जीवन में व्याप्त रहती है। इस में किसी राज्य वग का शरक्षण चाहिये, न पण्डितों का शास्त्र सिद्धांत। इसमें विपरीत नाट्यधर्मी परम्परा तभी तक जीवित रहती है जबतक उसमें किंचित उमका वह विशेष शास्त्रीय मंच अथवा नाट्य जीवन रह।

मध्ययुग में लोकधर्मी नाट्य-परम्परा, जीवन, समाज, घर-गृहस्थी में व्याप्त गाने गायन उलगव के अवसरों पर अनेक कमकाठ के रूप में जीवित रही। वही गायन का रूप धारण करके, वही नतन के रूप में और वही सामूहिक उत्सव के रूप में। इसके अनेक रूप इस भी थे जो अधनाट्य और नाट्येतर भी कह जा सकते हैं। इन रूपों पर मुसलमान शासकों की न कभी बुरादृष्टि पड़ी, न ये एम थे कि कोई भी इनका विगिष्टना में चौकता या इनका विराय करता।

भक्ति-आन्दोलन अथवा भक्ति-उदय मध्ययुगीन सस्कृति का सबसे बड़ा घटना है। इसी भक्ति ने पहली बार अपने उद्भव और लाविप्रियता के लिए रगमच के इस रूप का हृदय से ग्रहण किया। इतिहास के अनेक ग्रंथ तथा स्पष्ट घटनाएँ इस बात की साक्षात् हैं कि भक्ति-आन्दोलन के प्रमुख उन्नायकों ने इसी लोकधर्मी परम्परा का महारा किया। बंगाल में चन्दन महामुख नाट्य

के प्रेरणा स्रोत बने। बंगाल का 'यात्रा' इसका निश्चित स्वरूप बना। मिथिला में 'कीर्तनिया' और आसाम में 'अकिया' नामक नाट्य रूपों का प्रचलन हुआ। इन्हीं बंगाली की स्पर्धा में सत्ता ने 'गम्भीरा' नामक विशिष्ट लोकनाट्य रूप का विकास किया। उत्तर भारत में यही 'गम्भीरा' आगे 'जोगीरा' या 'जोगीडा' के रूप में लोकप्रिय हुआ। दक्षिण के मराठार में गीतगोविन्द के आधार में 'कृष्णनाट्य का उदय हुआ। पौराणिक आर्यानों के आधार से अभिनयात्मक नाट्य नाट्य 'काक्ली' का प्रचार भी इसी काल का सत्य है।

इस साक्षरधर्मी नाट्य परम्परा का उदय विभिन्न प्रान्तों में इसी प्रेरणा श्रोत से हुआ, अनेक स्वरूपों में। महाराष्ट्र में तमाशा, गुजरात में 'मकाई', राजस्थान में 'माउ और उत्तर प्रदेश में 'स्वाग', 'भगति', 'नौटंकी और 'बहु रूपिया'।

इन नाट्य रूपों के अतिरिक्त लोक जीवन में व्याप्त 'व्याह श्राद्ध' और अनेक मंगल उत्सव के समय भी अर्ध-नाटक के रूप में अत्यन्त स्वल्प विकसित हुए। उत्तर भारत में व्याह के दिना में नित्य रात में स्त्रियाँ 'नकटा' या 'नकटौरी गायती हैं। नाटक से बिगड़कर बना हुआ यह नकटा गद्य उल्लेखनीय है। इसी तरह और भी अनेक रूप हैं जो अध्ययन की दृष्टि से मनोरंजक हैं—रगमच की दृष्टि से महत्वहीन।

धार्मिक नाट्य-परम्परा

मध्ययुगीन धार्मिक नाट्य-परम्परा में मूल रूप से 'लीला' रूप हमारे सामने है। 'लीला' के पीछे भक्ति से ज्यादा धर्म है।

इसके अन्तर्गत 'रासलीला' और 'रामलीला' यही दो प्रमुख रूप विकसित और उन्नति हुए। 'रासलीला' की उद्गमभूमि अज है—मथुरा, कृष्णवन तथा इसके मूलाधार हैं कृष्ण राधा तथा उनके चरित। 'रामलीला' की रगभूमि है अवध, तथा इसके मूलाधार हैं राम, और उनकी चरितकथा रामायण। इन दोनों रूपों में रामलीला अपेक्षाकृत बड़े लोक जीवन, व्यापक समाज का दर्शन है। इसका रगमच विस्तृत और विराट है—तथा इसमें रगमच के निम्नलिखित स्वरूप मिलते हैं

१. एक लक्ष्मी लक्ष्मी बनकर गायता है। तो और, दूसरे गायकों का प्रेम से गाया होता है—स्वधो-धरक गायन—उत्तर प्रायुत्तर, प्रश्न और चुनौती के रूप में। इनमें पारो और राणी आकर हम देखती-सुनती हैं।

(१) विभिन्न चौलाआ का विभिन्न दंग म्यान तथा स्थिति में करना—
‘चलित रगमच ।

(२) एक आर राम का मच दूसरी आर गवण का मच—अथान एक और अयाध्या, पचवनी आदि दूसरी आर लका बहुत बड़ म्यान म यह ‘मुक्त आका’गी रगमच ।

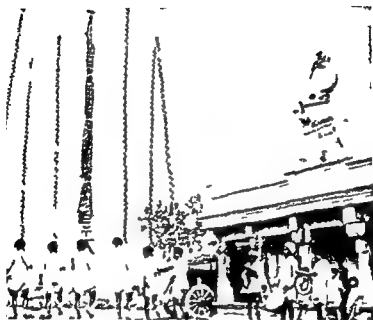
(३) विभिन्न चौकिया पर राम-चरित क विभिन्न हत्या का अभिनीति करव उस रामलीला चौकी के रूप में निवानना—टूबला क रूप में—यह है ‘यात्रा रगमच ।

रामलीला का रगमच इसका विपरीत एक रूपवादी स्वरूप है । फिर हुए स्थान पर इसका प्रदर्शन । नृत्य और गायन में पूरा । प्रकृति में कामन और शृंगारमय ।

पूरी मध्ययुगीन नाट्य भाग और उसकी रगमच-परम्परा इतिहास के रूप में चाह जितनी मनोरञ्जक हो किन्तु जीवित महत्वपूर्ण रगमच के परिप्रक्षय में दंगका कोई विशेष महत्व नहीं है । इन पूरे युग में न हम कोई एक महत्वपूर्ण नाट्य-कृति मिलती है न रगमच का कोई स्तरीय रूप । इस पूरे युग का महत्व भक्ति-काव्य नृत्य चित्रशाला की उत्कृष्टता में दिया जायगा नाटक और रगमच के स्तर से नहीं ।

वस्तुतः पूरे मध्ययुगीन जीवन पर जहाँ दिया गाने वैराग्य भाषा की भावना तथा पर्ना और मुमनमानी सत्कृति की छाप रही है वहाँ नाटक और रगमच की जीवित महत्वपूर्ण विद्या का प्रग्न है नहीं उठता । भावना विन्वास धतना और मौन्दय-बोध—इन सभी दृष्टियाँ से वस्तुतः मध्ययुग रगमच और नाटक के विशुद्ध पड़ता है ।





पट्टा कृण्तिता

ममूर व गिव मन्त्रि म प्रचरित पूजा-नाट्य । जजग् नामक
 २२ ध्वज पूजा-नमाराह वा परम्परा

दूसरा भाग
पाश्चात्य रंगमंच
कृतित्व पक्ष (ड्रामा)

पाश्चात्य रगमच का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम यूनान देश में हुआ जिसे इतिहास
 कारों ने 'थियेटर आफ डायोनिसस' की मना दी है। यूनानियों का प्रकृति
 में घपार श्रद्धा थी, क्योंकि उसी में से उन्हें महान् गविन का अनुभव हुआ था।
 विशेषकर प्रकृति के परिवर्तनशील दृश्यों को देखकर तथा उसकी घटल नियमा
 की अनुभूतकर यूनानियों ने प्रकृति में एक देवी गविन की कल्पना की जो
 मानव का सुख-मनोष और समृद्धि देने वाली थी। उसी गविनमय कल्पना के सहारे
 स्वभावतः यूनानियों ने अपने आदि देवता के रूप निर्माण और उसकी पूजा
 आराधना को निश्चित किया। सर्वप्रथम उस देवी शक्ति के रूप में 'डायोनिसस
 तथा दक्स' देवता का अवतरण यूनानी जीवन में हुआ। कहा जाता है कि
 'डायोनिसस' देवता केवल समाज-योपक ही गविन-देव न थे, बरन् वह प्रकृति के
 विज्ञान तथा वैभवपूर्ण जीवन के भी प्रतीक थे। वही प्रकृति को जीवन-दान
 देते, वही प्रकृति की उत्तम परिवर्तनशीलता की आदि गविन थे। फलतः वही
 समस्त जीवन के दाना, रक्षक और सुन्दरता के मूल थे। आएँ यूनानियों ने वही
 ही जीवनपूर्ण और भव्य ढंग से अपने इस 'डायोनिसस' की पूजा की।

डायोनिसस का थियेटर

डायोनिसस के पूजन आराधन मुख्यतः बसंत के दिना में हात था, जो
 निश्चय ही यूनानियों के जीवन के लिए अपूर्व आनन्द और उत्साह का प्रतीक
 होता था। गौरीग्वि आनन्द और स्फूर्ति देने वाला, गाँव चित्ता को हरन वाला,
 ऐसा अश्रुत श्रवता है ता जीवन में उमक प्रति इतनी श्रद्धा और आस्था का
 भाव क्या न उत्पन्न हो ?

डायोनिसस की इस पूजा-व्यवधि में पश्चिम के आदि रगमच का सूत्रपात
 हुआ। क्या ? उसकी पूजा प्रक्रिया कभी थी तब ? 'डायोनिसस' की पूजा
 आराधना में पहले-पहल एक प्रमुख गायक यूनानियों की टालिया के सामने आता
 और 'डायोनिसस' की प्रशंसा में गीत गाता, फिर नृत्य द्वारा उस देवता का अपनी
 श्रद्धालुओं अर्पित करता। साथ ही वह दूमेरे देवता (कर्म) भयवा जा गराव
 और विगुड भोग के देवता मान जान थे) मुरादेव का भा प्रपन्ना में गान गाता
 और उसकी लिये अपने नृत्य भाव अर्पित करता। इन नृत्य-गीता के साथ ही

माथ वीरे धीरे प्रमुख गायक के गायन तथा गतन में तमय होकर दशक लोग उसमें सहज ही योग देने लगे। आगे फिर गायका की टोली एक में दो और दो से चार छह हो गयी। आगे चलकर यही नृत्य गायन की टोली, यूनानी जीवन (रगमच) में 'कोरस' अथवा 'सहगायन' कहलाइ।

'ड्रामा' का जन्म अपने बीज रूप में 'डायोनिसस' की पूजा प्रतिष्ठा में गये गये इसी 'कारस' अथवा 'सहगायन' के मध्य से हुआ। 'ट्रेगडी' का आदि अर्थ है—गात साग' क्योंकि उस पूजन-समारोह में वजरे की बलि भी दी जाती थी।

छठी शताब्दी ई० पू० में यूनान के 'थेस्पिस' नामक एक व्यक्ति ने 'कोरस' में एक परिवर्तन किया—कोरस में वार्तालाप का प्रयोग। आगे चलकर इसमें तीसरा तत्त्व क्या का मिलाया गया—फिर देवताओं का स्थान कालांतर में श्रद्धा वीरा तथा नायकों ने ले लिया। इस तरह 'ड्रामा' की सम्पूर्ण स्थिति पूरी दिख गई। शेष रह गया—भौतिक मंच, जिस पर यह 'ड्रामा' प्रस्तुत हो।

इसने लिये प्रायः ई० पू० पांच सौ में सबसे प्रथम 'थियेटर ऑफ डायोनिसस' का निर्माण हुआ। यह एथेन्स के 'एक्रोपोलिस' नामक पर्वत के चरणों में स्थित था। यह अर्धवृत्ताकार था और ऊपर से टूटा था। दृश्यों के बैठने के लिये पक्षियाँ एक के ऊपर एक घटानें काटकर बनायी गयी थी। स्वभावतः मंच भी पर्वत का बना था और उसके पीछे एक कलात्मक ऊंची दीवार थी। दृश्यों की मर्यादा पचीस से तीस हजार तक होती थी। मुख्य मंच के ठीक सामने एक नीचा अर्धवृत्ताकार छोटा सा मंच और हाता था जिस पर कैंस्टा बैठते थे। मंच के मध्य में 'डायोनिसस' की वेदी होती थी, जिसके चारों ओर नृत्य होते थे। इस वेदी के पास की सीटें सगमरमर की होती थी, जो पुजारियाँ तथा मजिस्ट्रेटों के लिये सुरक्षित थी। वेदी के ठीक नीचे 'डायोनिसस' का पुजारी बैठता था। उसके दाहिने ओर मुख्य दरवाजा 'एपोलो' का पुजारी और बायीं ओर नगर देवता ज्यूस पोलियस का आसन होता था। नृत्य और संगीत के इन पूजन आराधन समारोह में 'थियेटर ऑफ डायोनिसस' के मंच पर यूनानी देवताओं और राजा वगैरे महापुरुषों का जीवन चरित दिखाया जाता था।

थियेटर ऑफ डायोनिसस की इस रंग प्रतिष्ठा में मंच प्रथम 'ड्रामा' का उद्गम हुआ। अतः 'ड्रामा' की कला तथा उसके सिद्धान्त भी सबसे प्रथम यहीं सूत्रबद्ध हुए।

ई० पू० पाँच सौ से लेकर चार सौ ई० पू० तक का सौ वर्षों का समय यूनानी ड्रामा के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ, क्योंकि प्राचीन यूनान के तीन महान नाट्यकार—एस्कीलस, सोफोक्लीज और यूरोपाइडीज इनो पान में हुए। इस क्षेत्र में सबसे प्रथम 'थेस्पिस' ने सगमरमर ३३० ई० पू० में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'थोइटिक्स' की रचना की। इसमें इस महान् पुस्तक में

काव्य की परिभाषा और कला सिद्धांता को सूत्र बद्ध किया। इसी प्रसंग में भरतू ने 'ट्रेजडी'—(ड्रामा) को काव्य कला का उत्कृष्ट रूप माना और इसी के आधार से उसने 'ड्रामा' व सिद्धांता का विवेचन किया।

ड्रामा क्या है ?

भरतू ने 'ड्रामा' को काव्य का प्रमुख भेद माना। यद्यपि उसने ड्रामा की कोई स्वतंत्र परिभाषा नहीं की किन्तु कला और काव्य के सिद्धान्त विवेचन में उसने कुछ ऐसे विवेचनारमक सूत्रन मिलते हैं जिनके आधार पर ड्रामा के लक्षण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

(१) एक तीसरा भेद और भी है—इस विषय की अनुकरण रीति का, क्योंकि माध्यम एक ही और विषय भी एक हो, फिर भी कवि या तो समाख्यान द्वारा अनुकरण कर सकता है—अथवा अपने सभी पात्रों को जीवित-जागृत और चेत फिरत प्रस्तुत कर सकता है।

(२) तभी कुछ सागा का कहना है कि इन काव्यों को 'ड्रामा' इसलिए कहा जाता है कि 'इन्हें काव्य-व्यापार का निदर्शन रहता है'।^१

काव्यशास्त्र (पोट्टिकम) पृष्ठ ११—१२

उक्त उद्धरणों के आधार पर यह निष्कर्ष 'ड्रामा' के विषय में सहज ही निकाला जा सकता है कि ड्रामा काव्य का वह महत्त्वपूर्ण रूप है जिसमें काव्य-व्यापार का प्रदर्शन रहता है। और ड्रामा की प्रकृति काव्य के स्वरूप की ही भांति अनुकरण सिद्धान्त पर प्रतिष्ठित है।

इस प्रकार यह ड्रामा व अथ और परिभाषा की दिशा में पहला सिद्धांत है।

अनुकरण सिद्धान्त (The Theory of Imitation)

भरतू के काव्यशास्त्र में 'अनुकरण' से अभिप्राय है साहित्य में जीवन का वस्तुपरक चित्रण जिसमें हम अपनी भाषा में जीवन का कल्पनात्मक पुनर्निर्माण कर सकते हैं। 'अनुकरण' सिद्धान्त का 'सिसरो ने जिन अर्थ में ग्रहण किया है—और जिससे आज तक व सभी नाट्याचार्य सहमत हैं वह है 'A copy of life a mirror of custom a reflection of truth

अतएव अनुकरण के इस सिद्धान्त के अनुसार ड्रामा जीवन का यथार्थ

^१ भरतू के काव्यशास्त्र, अनुवादक, डॉ० जगेन्द्र, पृष्ठ ६४

निष्ठ चित्र है, जिसके अनुसार डामा लेखक को ऐसी कृति की रचना करनी चाहिये, जो मंच पर प्रस्तुत होकर ऐसा लग, जैसे वह जीवन का सच्चा प्रतिरूप है। उसके कथोपकथन ऐसे हों जो दर्शक के लिये ऐसा सिद्ध हों कि मानो वह सीधे जीवन से ग्रहण किया गया है। इस प्रकार डामा का सबसे सुन्दर रूप यह है जो जीवन के अनुरूप ही दर्शक को अपना रूप और प्रभाव दिखा सके। पर क्या जीवन का ऐसा सच्चा अनुकरण किसी भी लेखक के लिये संभव है? जीवन अपनी विराट परिमा और आश्चर्यजनक सूक्ष्मता में विचित्र ही है जिस सम्पूर्ण रूप में इतिहास द्वारा बसा-बा-बसा ही ग्रहण कर पाना और उससे भी कठिन कार्य उसे उसी तरह अभिव्यक्त कर पाना निश्चय ही असंभव है।

वस्तुतः अनुकरण के इस सिद्धांत पर महान् डामा लिखे भी नहीं गये, न किसी महत्वपूर्ण डामा-लेखक ने इस तरह स्वीकार ही किया। डामा को जहाँ जीवन से आगे बढा की भूमिका दी गयी वहाँ डामा-लेखन की प्रेरणा में यथार्थ जीवन से आश्चर्यजनक सामग्री के चुनाव की बात बड़े लेखकों ने उठायी है। इस सन्दर्भ में इस चुनाव से भी अधिक मुख्यबान् तत्त्व है यथार्थ की दिशा में लेखक की व्यञ्जना शक्ति, जिसका आधार से डामा में व्यवहृत साधारण से साधारण घटना, वायव्यापार तत्त्व से लेखक अपनी कृति में मानव जीवन के चिरन्तन रहस्य और मानव चरित्र के गूढ़ रहस्य के प्रति प्रकाश फला द।

डामा के अर्थ में 'अनुकरण' की परम यथार्थवादी दृष्टि भरतृ की कल्पना नहीं थी—इसमें प्रायः सभी आलोचक विचारक सहमत हैं। भरतृ ने 'अनुकरण' शब्द का प्रयोग प्लेटा आदि की भाँति स्थूल—यथार्थ प्रतिरूप के अर्थ में नहीं किया। बल्कि भरतृ ने अनुकरण का अर्थ लिया है जसा यथार्थ होता है वैसा नहीं बल्कि जैसा वह इन्द्रिया का प्रतीत होता है। इस विकास में भरतृ ने आधुनिक टीकाकार 'पाटम' ने अनुकरण का अर्थ इस भाव स्तर से बहुत ही स्पष्ट कर दिया है जो निश्चय ही भरतृ के तत्त्वविषयक विचार को सही अर्थों में प्रकट करता है—अपन पूर्ण अर्थ में अनुकरण का आशय है ऐसा प्रभाव का उत्पन्न, जो किसी स्थिति, अनुभूति अथवा व्यक्ति के गूढ़ प्रकृत रूप से उत्पन्न होता है। पाटम ने अनुसार वास्तव में 'अनुकरण' का अर्थ है—आत्माभिव्यजन से भिन्न जीवन की अनुभूति का पुनर्गन्धन।

इच्छाशक्ति का द्वन्द्व

'डामा' का जब उसका अविभाज्य अंग थियेटर के अविच्छेद्य में रचकर

उसकी परिभाषा ढूँढी जान लगी तो बाद में विद्वानों ने कहा कि 'ड्रामा' में थियटर—विल'—इच्छा शक्ति को कायरूप में प्रस्तुत होने का उद्देश्य चाहता है। इस प्रसंग में ड्रामा में प्रसिद्ध आचार्य विनियम आचर' का यह कथन बहुत प्रसिद्ध है

'Drama is a representation of the will of man in conflict with the mysterious powers or natural forces which limit and belittle us. It is one of us thrown living upon the stage there to struggle against fatality, against social law, against one of his fellow mortals, against him self if need be, against the ambitions, the interests, the prejudices the folly, the malevolence of those around him.'

उक्त कथन जितना 'ड्रामा' में विषय में लागू है निश्चय ही वह उतना साहित्य में भी प्रकार—उपन्यास, कहानी आदि पर भी लागू है। वस्तुतः सभ्य, बद्ध प्रतिद्वन्द्व तत्त्व पश्चिम के सावर्भौम सत्य हैं। इस सन्दर्भ में 'ड्रामा' की अपनी विशेष भूमिका और परिभाषा क्या है यह विचारणीय है। ड्रामा—एक कला प्रकार, एक काय प्रकार एक साहित्य विद्या का अपना निजत्व क्या है? जिसकी समानता कोई कला, कोई साहित्यकार नहीं कर सकता—यह जानना, ड्रामा की प्रकृति का अन्वेषण है।

ड्रामा की मौलिक विशेषता

दण्ड-सापेक्ष

'ड्रामा अपनी प्रकृति और विद्या विशेष में सबसे अलग यहाँ यह है कि ड्रामा में दण्ड सत्य सनातन से जुड़ा हुआ है। जिना दण्ड के किसी ड्रामा की सभी कल्पना और परिवर्तन की ही नहीं जा सकती। पर यहाँ विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि ड्रामा इस आधार से मात्र कोई ऐसी कला नहीं है कि जिसमें कोई कहानी अथवा घटना दण्ड से नहीं जाय—अपितु 'ड्रामा' में मध्य में एक ऐसी कथा-कहानी अवश्य है जिसकी व्याख्या—अथवा, मंच पर अभिनेताओं द्वारा दण्ड का कराया जाना है। अतएव पहली स्थापना का विकास अब इस तरह हुआ कि ड्रामा की कल्पना अथवा उसके अस्तित्व का बाय दण्ड को कथा की व्याख्या देने वान अभिनेता के बिना हो ही नहीं

सकता। स्पष्ट है ड्रामा के इस धरातल में दशक और अभिनता दो सत्य मिले हैं—और दोनों विद्युद्ग मानव-सत्य हैं—वस्तु मानव है। अतः जो कुछ ड्रामा में इहे व्याख्या के लिये अपेक्षित है—वह है मानव-तत्त्व। इसलिये डेमटिस्ट' के लिये यह ध्यान में रखना सदा-सर्वदा आवश्यक है कि उसका ड्रामा अभिनेताओं द्वारा मंच पर दशक के लिये प्रस्तुत होने के नियम कृत्रिम की सजा पा रहा है जो दोनों स्तरों से एक विद्युद्ग मानव-सत्य है।

इन तत्त्वों के फलस्वरूप ड्रामा साहित्य के अनेक प्रकारों की अपेक्षा स्वभावतः अपने अस्तित्व के चारों ओर अपनी सीमाओं की दीवार खींच जाता है। इस दिशा में ड्रामा की पहली सीमा है—समय की। क्योंकि इसका सीधा सम्बन्ध है दशक-वर्ग से—जो कुछ समय के भीतर ही ड्रामा देख चुकता स्वीकार करेगा। यही स्थिति अभिनता की भी है—वह मंच पर उतनी ही देर तक अभिनय कर सकता है वह उतना ही अभिनय कर सकता है जितना कि मनुष्य से संभव होगा। वह अपनी मानवीय परिस्थिति के परे नहीं जा सकता। इस मानव-सत्य का बना ड्रामा न बहुत ही मनोरंजक रूप में प्रस्तुत किया है—ड्रामा लिखते समय में जमा के सिद्धान्तों से नहीं अनुशासित होता—ड्रामा निजने के नियमों का भी मैं नहीं जानता वस्तु यह नियम और सिद्धान्त असत्य कारणों से मुझे भ्रम में मग्न हो जाते हैं उनका अनुष्ठान की भौतिक सीमाओं तथा नियमों से उसके उपस्थापन में आप जगन तथा अनेक दुष्टताओं की स्थिति में म्युनिमिपलिटि द्वारा बनाए गये कानून के द्वारा से, अभिनय-कला की सीमाओं से, दशक द्वारा ड्रामा के द्वारा देख सुनकर उसे समझने की सीमा से—(इनके अतिरिक्त) मुझे अपनी पाकेट का भी ध्यान रखना होगा, ड्रामा कम्पनी के मनेजर का पाकेट का भी ध्यान रखना होगा, (साम ही) अभिनता और दशक की पाकेट का भी ध्यान इससे भलाया यह भी साबना होगा कि दशक कितनी देर तक के नियम जलपान और विश्राम के बिना ड्रामा लिखने के लिये बैठ सकता है।—व्यावहारिक सत्य के ये अनेक पक्ष ड्रामा लेखन को प्रभावित करते हैं।^{११}

साहित्य का यह झूठा प्रकार ड्रामा साहित्य के अनेक प्रकारों में कितना भिन्न है। रामचण्ड इतनी सीमाओं, इतने विचारों और जीवनगत इतनी मायनाओं से अनुशासित होता है। कथा और कविता की मर्यादाओं और उनकी स्वतंत्र शक्ती से यह 'ड्रामा' कितना भिन्न है। ड्रामा लेखक 'पादों' से अपनी रचना करता है—किन्तु वह 'पाद' ऐसा जो ड्रामा के पात्रों के मुह में रखकर उजागर होने हैं स्वातंत्र्य रूप से नहीं। सीधे ड्रामा-लेखक की ओर से भी वह 'पाद'

ही आ सकते। और पात्रों के मुह में भी व शब्द इस मायता से प्रतिष्ठित किये जाते हैं कि वे अभिनेताओं द्वारा मंच पर दृष्टांत का सम्प्रेषित करने योग्य हों।

सत्याभास का प्रश्न

‘ड्रामा’ जीवन का दर्पण है—यह सत्य हमारे सामने एक स्वाभाविक प्रश्न खड़ा करता है—क्या ड्रामा का रंग अनुष्ठान दर्शक के लिये ऐसा शक्तिशाली सत्याभास पदा करता है कि वह यह विश्वास करने लगे कि जो कुछ यह मंच पर प्रस्तुत होने हुए देख रहा है वह साक्षात् जीवन है? यह प्रश्न ड्रामा लेखक से अधिक दर्शक के चित्तित्व से सम्बन्ध रखता है—विशेषकर दर्शक के मन से, उसकी ग्रहण-शक्ति से और सत्य अधिक उसकी कल्पना अथवा सज्जन-शक्ति से। इस सदन में दर्शकवर्ग में कई कोशिका हो सकती है किंतु सत्याभास का सत्य ‘ड्रामा’ और उसके रंग अनुष्ठान का परम शास्त्र पक्ष है।

ड्रामा का मूलधार

‘ड्रामा’ के विषय में अतः तक इतने विचार के बाद ड्रामा के मूलधार की ओर महत् ही संकेत किया जा सकता है। ‘ड्रामा’ की एक परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि ड्रामा जीवन के विषय में विचार व्यक्त करने की एक कला है। और इस कला का रूप भी ऐसा कि जिसमें विचारों को व्यावहारिक अभिव्यक्ति देने के लिये अभिनय रंगमंच में बँठे हुए दर्शकगण के सामने दृश्यरूप में उभरे उपस्थित करता है।

निश्चित ही ड्रामा की यह परिभाषा अपने बाह्य तत्त्वों के ही साथ अविन है जिससे कि इसमें रंग और प्रकृति में साहित्य और कला के अर्थ प्रसारों में उसका विभिन्नता सिद्ध है।

पर ड्रामा केवल बाह्य तत्त्व नहीं है। न यह केवल गीत चमत्कार ही है। इसकी अपनी अपूर्व शक्तिशाली आन्तरिकता है। ड्रामा का यह आन्तरिकता क्या है? इसकी आन्तरिक प्रकृति, परिभाषा और शक्ति-सम्पन्नता—

‘ड्रामा और ड्रैमेटिक’

‘ड्रामा’ और ‘ड्रैमेटिक’ ये दोनों शब्द प्रायः जीवन क्षेत्र के व्यवहारों में प्रयुक्त होते हैं। अप्रत्याशित रूप से किसी घटना का घट जाना, दो शत्रुओं का सहमा मिलन हो जाना, ऐसे क्षणों पर अक्सर लोग के मुह से यह निबल पड़ता है कि ‘अमुक का अंत बड़ा ड्रैमेटिक’ रहा, ‘अमुक’ स्थान पर आज एक ‘ड्रैमेटिक’ घटना घटी। इस प्रकार ‘ड्रैमेटिक’ के भावबोध में ‘अप्रत्याशित तत्त्व,’ घटना समाग आकस्मिक ‘प्रकम्पन’ (‘गॉक’) ‘क्षोभ’ और ‘मानसिक घबराहट’ आदि के प्रभाव मिले रहते हैं। इसका प्रत्यक्ष कारण है—दृग्-वग जिसका दिखाने के लिये जिसके मनोरंजन और उसकी स्वाभाविक मानसिक भूत्व की परिनिष्पत्ति के लिये ड्रामा रचे जाते हैं। इसके उदाहरण में प्राचीन अथवा आधुनिक काल की कोई भी ड्रामा की रचना ली जा सकती है। अरस्तू ने स्वयं अपने काव्यशास्त्र में ‘अभिज्ञान (Recognitions & discoveries)’ के धरातल से इस ड्रैमेटिक भावबोध के ऊपर काफी विस्तार में प्रकाश डाला है।

अभिज्ञान का सबसे उत्कृष्ट रूप वह है जहाँ वह स्थिति विषय के साथ ही घटित होती है—जैसे ‘ओडिपस’ में—ऐसा अभिज्ञान विषय के साथ मिलकर या तो कदवा जगावगा या त्रास और हमारी परिभाषा के अनुसार ऐसे ही प्रभावों के उत्पादक काव्य-व्यापारों का त्रासदी में चित्रण किया जाता है।^१

इस ड्रैमेटिक तत्त्व से ग्रीक ड्रामा और शेक्सपियर के दुरान्तकी भर पड़ हैं। शेक्सपियर का हैमलेट इस ड्रैमेटिक का सुन्दरतम उदाहरण है। हैमलेट के पिता का मृत रूप में सट्टसा प्रकट होना हैमलेट का आगे पागलपन की स्थिति में सहसा पहुँच जाना, क्लॉडियस के घोष में अप्रत्याशित रूप में ‘क्लोनिअस’ की हत्या कर देना आदि आकस्मिक प्रकम्पन सक्षाम और मानसिक घबरे के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। ड्रैमेटिक का यह सत्य ड्रामा के अन्तर्गत केवल दुरान्तकी में ही नहीं है, उरल सुखान्तकी में भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। ‘ग्रास्वर वाइल्ड’ का दी डम्पारटैम आफ ग्रीडगर्नैस्ट इसका चिरस्मरणीय उदाहरण है।

निन्तु ड्रैमेटिक के इस बाह्य भाव को ड्रामा की रचना में घातरिक्त अर्थ में देना और उसका सचचा प्रयोग करना ‘ड्रामा’ का महत्वपूर्ण माना है। जो बाहर से अप्रत्याशित घटना है काव्य-व्यवहार है उसका अन्तर्गत में ड्रामा अपनी रोगात्मक और काव्यात्मक दिशा में निरंतर विकसित होता दीप्त पड़, यह ड्रामा की प्रवृत्ति का उद्भूत बड़ा तत्त्व है। साथ ही ये ड्रैमेटिक तत्त्व समूच ड्रामा

मे कथानक, चरित्र और उद के परावल स विस प्रकार उसक विचार-तत्त्व, मानव-तत्त्व से गुथकर रचित हुए हैं कि ड्रामा अपने एकान्त प्रभाव मे चिर-स्मरणीय हो यह ड्रामा की अपनी विशेष कला है।

ड्रामा की परिवर्तना प्रस्तुतिकरण स्तर से जिस प्रकार जिना अभिनता और दशक के असंभव है, ठीक उसी प्रकार ड्रामा की रचना अपने मृजन के स्तर से, जिना जिनासापूरा घटना, सबंध स्थिति के, कलात्मक चयन के कठिन है—ऐसी घटनाएँ स्थितिया, काय-यापार जा अपनी मौलिकता, अप्रत्याशितता, और अपने अनोखेपन तथा निरासेपन से हम विमोहित कर लें।

धर्मितायें

ड्रामा एक कला है स्वाभावतः अथ कलाशा की भांति इसकी अपनी कुछ धर्मितायें हैं जिनमे इसका अपना सहज व्यक्तित्व प्राप्त होता है। ये धर्मितायें स्वभावतः ड्रामा में प्राचीन काल से आज तक विद्यमान हैं। अरस्तू ने समग्र कला की परिभाषा देते हुए जब कहा कि 'समस्त कला अनुकरण मान है' यह कला के विषय मे उसकी व्याख्या, अवधारणा थी—जिससे असंतुष्ट होकर यूनान के एक दूसरे भालोचक और दार्शनिक प्लेटो ने इस अवधारणा की बहुत आलोचना की। 'जब कला अनुकरण मात्र है तो वह झूठ और मिथ्यावाद का प्रचार करती है। अतएव कलाकारों को सम्य समाज से दूर रहना चाहिये।' किन्तु जब उसने कला की धर्मिताया के विषय में मत दवर अपनी अवधारणा को निर्दिष्ट किया तो कला की भूमिका सहसा उन्नत हो गयी—'कला में सत्य का स्थान है, परन्तु यह सत्य इतिहास का घटनाभा के समान नहीं, बरन उसके कल्पना जगत की सत्यता है।

इससे यह भाव स्पष्ट हुआ कि ड्रामा की कला एक कल्पनापूर्ण अनुकरण है, जो जीवन के अंगों का कलात्मक चित्रण करती है। इस के द्वितीय भाव में ड्रामा जीवन का सत्याभासी प्रतिबिम्ब प्रदर्शित करता है और इस प्रदर्शन में सीमित तथा कालाभूत इच्छा शक्तिया के दृढ़ में ड्रामा की आत्मा का प्रस्फुटन होता है।'

इसके अनन्तर ड्रामा की मूल धर्मिताया का प्रश्न आता है कि कला स्तर से ड्रामा की धर्मितायें क्या हैं ?

सकलनत्रय

'ड्रामा' की सांख्यिक और व्यावहारिक आलाचना म प्राचीन काल से आज तक काल (टाइम), स्थान (प्लेस) और बाय (ऐक्शन) के संयोजन की विवेचना हाती आयी है। भरस्त्रू के 'पोइटिक्स' म इन तीन संयोजन की चर्चा मिलती है। महाकाव्य और दुर्घातकी (ड्रामा) के अंतर को बताते हुए भरस्त्रू ने कहा है कि दुर्घातकी म यथासम्भव घटना को एक निश्चित अथवा अपेक्षित कुछ अधिक काल तक सीमित कर दर्शक का प्रयास देखने म आता है, जबकि महाकाव्य म समय का ऐसा कोई बंधन नहीं होता।^१ इस स्थापना के अनिवारित भरस्त्रू ने बाय म भी अतिरिक्त का संयोजन किया है। उसने बताया है कि 'ड्रामा' म बाय की यह अतिरिक्त सम्पूर्ण रूप से ड्रामा की आत्मा म परिव्याप्त ढंग से जाना चाहिये यात्रिक और निष्प्राण रूप से नहीं। जसा कि आत्मकथा या जीवन चरित चित्रण मे होता है, एक व्यक्ति के जीवन आधार के केंद्रबिंदु से सभी की शृंखला बनाने चलना और मात्र उस जीवन का कथानक का आधार बना देना।

वस्तुतः ग्रीक थियेटर म ड्रामा की व्यापक अविति के स्तर पर उनका 'कोरस' तत्त्व आदि से अलग एक महत्त्वपूर्ण बाय करता था जिससे कि उनकी सारी स्थापना, व्यापक, विविधतापूर्ण हाती हुई भी कोरस की मूल धुरी से बंधित रहती थी। पर आगे के 'ड्रामा' मे विशेषकर आधुनिक ड्रामा अथवा थियेटर म संयोजनत्रय का तत्त्व साधन और पालन दाना दृष्टियों से कठिनतर होता गया है।

ग्रीक थियेटर म 'कोरस' तत्त्व के कारण बाय, स्थान और काल तीनों की अविति सहज ही हाती चलती थी। फिर भी भरस्त्रू ने ड्रामा के कथानक स्तर पर तीनों की अविति के अलग-अलग बंधन बाय संयोजन की ही अनिवार्य भाव व्यक्त कर दिया है। इस प्रयोग म भरस्त्रू के अनुसार बाय संयोजन मुख्यतः दो भाग म सम्पन्न होता है।

○ ड्रामा की घटनाओं म बाय-कारण सम्बन्ध का स्थापना म।

□ ड्रामा म सब घटनाय अनिवार्यतः किसी एक लक्ष्य की ओर उन्मुख हो।

भाग प्राप्त के गिष्टवान्तिया ने संयोजनत्रय को एक सांख्यिक रूप देकर उस

'ड्रामा' के नियम एक अनिवार्य सत्य मान लिया। उनके मतानुसार सकलनत्रय की स्थिति इस प्रकार है कि ड्रामा में एक मूल द्वन्द्व, एक मूल घटना और इनके परस्पर एक प्रमुख कथानक रहता। यदि ड्रामा में अथ छोट-छोटे काय अथवा घटनाएँ आती हैं, तो उनका चयन और नियोजन इस प्रकार से होगा कि वे सब मूल घटना, मूल द्वन्द्व और मूल कथानक के अविभाज्य अंग सिद्ध हों। स्थान के प्रसंग में—सारी घटनाएँ 'ड्रामा' में एक ही जगह सगठित हों। और सारी घटनाएँ और काय-व्यापार एक ही क्षण में सञ्जात हों।

सकलन त्रय के स्तर से उक्त नियमों में बँधकर किसी भी बड़े ड्रामा-लेखक के लिए इनका इस प्रकार पालन सम्भव नहीं होता। कभी-कभी ड्रामा के विषय और कथानक की भाँति वे बाध्य इनका इस प्रकार पालन सम्भव भी हो जाता है। शेक्सपियर ने अपने टेम्पेस्ट तथा कामडो आफ फॉर्म में इन मूलनामों का पालन किया है। किन्तु अथ कृतियों में वह 'समय' और स्थान के एकत्व की परवाह नहीं करता।

पर पश्चिम के महान 'ड्रामा' साहित्य के देवर्षि इस मन्त्र में एक विशेष बात प्रायः सब काल की उत्कृष्ट ड्रामा-कृतियों में समान रूप से मिलती है—विशेषकर उत्कृष्ट दुष्कृतियों में—कि उनमें स्वभावतः बिना किसी काय-कारण के दृश्य से काय की शृङ्खला और उसकी गति, तेज और बिना अन्तराल के जम-जमिब रही है। 'शेक्सपियर ने इस क्षण में अपनी महान कला के प्रभाव में निश्चय ही हम मनुष्य में डाला है कि हम उसकी दुता-वही में यह विश्वास करने लगें कि काय की गति तेज है जमिब है काल की अवधि कम है। जबकि शेक्सपियर ने अपने ड्रामा में अधिक स्वाभाविकता और मत्स्यता लाने के लिए, अथ और दृश्यों के बीच वस्तुतः सम्बन्ध काल के अन्तराल को रिया है। 'हैमलेट', 'आथला', 'मकबेथ' आदि दुर्मान्तकी के अनेक निर्माण इस काल अन्तराल के सुन्दर उदाहरण हैं। पर दृश्यतः यह काल अन्तराल अनुभूत नहीं होता।

यही सत्य स्थान-एकता के भी मन्त्र में है। यह निश्चित है कि शेक्सपियर के मंच पर दृश्य नहीं लगाए जाते थे—यहाँ तक कि दृश्य विधान नहीं के बराबर था। इस वस्तु स्थिति में लाभ यह था कि शेक्सपियर अपने रंगमंच की भाँति के परस्पर एक बद्ध ही मुविद्या और बद्ध ही व्यावहारिक रूप से अपने ड्रामा में स्थान का परिचय कर सकता था—जहाँ भी जितना 'गोष्ठ्य' में उसकी दृष्टि हो। किन्तु फिर भी हम उसके ड्रामा में यह पाते हैं कि निम्न ड्रामा में यह स्थान एकता जितनी तीव्र है—यह ड्रामा उतना ही 'गति-गती' मिष्ट रूप है। उदाहरण के लिए आथला में नव्वे दो दृश्य-स्थान हैं—वेनिस और साइप्रस। हैमलेट ड्रामा भी अपने अविभाज्य रूप में 'गति-गती' के ही मध्य धूमना है।

मुख्यतः आधुनिक युग के ड्रामा-लेखकों की कृतियां से यह स्पष्ट है कि उनमें स्थान और काल की एकता का ध्यान सर्वाधिक है। सम्पूर्ण ड्रामा सीधे चौबीस घंटा में समाप्त। सारा ड्रामा सुनहरे दोपहर, शाम—एक ही दिन में सम्पूर्ण। 'बर्नाडो', 'आनीस', 'चम्बाव' और इसके बाद के ड्रामा-लेखक इस दिशा में सर्वोत्तम उदाहरण हैं। जैसे कि 'ड्रामा' जीवन के यथार्थ के प्रति प्राग्रहणीय है। और पश्चिम के प्रायः सभी बड़े ड्रामा लेखक इस सत्य में विश्वास रखते हैं कि 'स्थान और काल' की एकता के विषय में मर्यादित रहना महत्वपूर्ण ड्रामा के लिए आवश्यक है।

काय की एकता

काय की एकता यद्यपि काल और स्थान की एकता से सम्बंधित है फिर भी काय की एकता के प्रश्न की इनमें अलग—स्वतंत्र रूप में भी देवना चाहिए। वस्तुतः काय की एकता अपने आप में इन दो सत्यों को लेकर चलती है कि—

(क) आधिकारिक बयावस्तु में साथ ड्रामा में कोई भी विशेष महत्व की प्रासंगिक बयावस्तु नहीं होना चाहिए।

(ख) ड्रामा में दुर्घटनाओं और सुखान्तों परस्पर मिलकर नहीं चल सकते। दाना का अस्तित्व अलग अलग है।

यह सत्य है कि ड्रामा और नाटक (भारतीय) दाना में काय का सकलन अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस मद में समय, स्थान-मकान और काय-मकान के प्रागिक सत्य हैं।

एकांत प्रभाव की एकता

उपयुक्त तीनों प्रकार की एकता अथवा संवर्धन का मारभूत तथ्य है ड्रामा में केवल एकांत प्रभाव की एकता। निश्चय ही इस आधारभूत एकता का सम्बंध स्थान काल और काय की एकता है पर मूलतः इस एकता का सम्बंध ड्रामा में मृज्जन तत्त्व से है उस रचना प्रक्रिया से जिसमें दृष्टि के रूप में प्रादि में अन्त तक यह एकता काय करती रहती है और जिना इसके ड्रामा सब नियम और तत्त्वा से सगठित होते हुए भी निष्प्राण है। वस्तुतः यही एकता

‘ड्रामा’ का चरम उद्देश्य है। इसकी सामाजिक और कलात्मक उपयोगिता है। और इस एकता की केवल मायता यह है कि समूचे ‘ड्रामा’ से अन्त में केवल एक ही प्रभाव, फल निकले—या अन्त नहीं। पर इस एकता का अर्थ यह नहीं है कि समूचे ड्रामा में केवल एक ही भाव और एक सा ही संघ आदि से अन्त तक हो। बल्कि महत्वपूर्ण ड्रामा में अनेक भावा विचारा के बीच से इसका एक आधारभूत भाव, इसकी एक अपनी दृष्टि उजागर होती है।

संस्कृत रंगमंच इस सिद्धांत में सार के समी रंगमंच में श्रेष्ठ है। वहाँ का ‘रस सिद्धान्त’ इस एकता का अभूतपूर्व पत्र है।

ड्रामा के प्रतिमान

ड्रामा के मूल्य का निर्णय उससे सिद्धान्त पक्ष अथवा शास्त्रीय तत्त्वा में न हाकर उसके विषय (रंगमंच) में ही है। विषय का अर्थ यहाँ उमक मानिक अर्थ में न होकर उमक कलात्मक सद्म में है। अतएव किसी ड्रामा को पढ़कर उमक मूल्य का निर्धारण केवल इसी कमीती पर हागा कि वह ‘ड्रामा’ अपने रंग अनुष्ठान में, अपने व्यावहारिक प्रस्तुतिकरण में क्या हागा? रंगमंच की दृष्टि में ड्रामा में यह स्पष्ट दखना हागा कि इसका मंच-मूल्य क्या है इसकी प्रेक्षणीयता कमी होगी और ड्रामा का सर्वोत्कृष्ट गुण अभिनयानिका कृति किनती है कमी है?

बस्तुतः ‘ड्रामा’ का पढ़कर कलना से अथवा अपनी मृजनात्मक दृष्टि से उसका यह मूल्य दूर पाना बहुत ही कठिन है। इससे कई कारण हैं—

(क) ड्रामा सिद्धान्त की कठिनाई—

इस प्रसंग में ड्रामा के साहित्यिक मूल्य और रंगमंचगत मूल्य—इन दोनों में कठिनाई है। कुछ ड्रामा-नमक का मत है कि ड्रामा की महत्ता उसके साहित्यिक मूल्य में है। जात्र बनाडगा उन विचारकों में से एक हैं। कुछ का कहना है कि ड्रामा का मूल्य साहित्यिक न हाकर केवल रंगमंचगत है।

(ख) रंगमंच के बलत स्वरूप की कठिनाई—दूसरी कठिनाई है कि रंगमंच अपने ऐतिहासिक तथ्या और उत्तरदायित्व के कारण युग के साथ सदा बदलता रहता है—अपने रूप में भी और अपने कलात्मक संरचना में भी। पश्चिम के महान् ड्रामा के अध्ययन से यह स्पष्ट भी है कि वहाँ के सार उत्तम नीय ड्राम निचय हा या तो किसी विशेष अभिनय का ध्यान में रखकर लिख गये हैं, या तो किसी दृष्टि (महत्ता) के लिये या व्यापक अर्थ में अन्त का न के

किसी विशेष रगमच के लिये लिखे गए हैं। अर्थात् ड्रामा-लेखक ने अपनी कृति का अपने समय के दर्शकों के लिये लिखा है।

इस प्रकार ड्रामा-लेखन का मंच, अभिनय और दर्शक इन तीनों पर निर्भर रहना कालान्तर में ड्रामा के मूल्य निर्धारण में निश्चय ही कठिनाई उपस्थित करता है। क्योंकि इस मंच में युग और काल के सौंदर्य-बोध और कला प्रणिमाएँ सदैव बदलती रहती हैं।

थियेटर और ड्रामा

यह सत्य है कि साहित्य और कला के समस्त प्रकारों में ड्रामा एक अलग प्रकार है जिसका सम्प्रदाय सोधे मंच अनुष्ठान के फलस्वरूप अभिनय के माध्यम से रगमचन में बड़े हुए दर्शकों के लिए है। स्वभावतः ड्रामा का सम्पूर्ण मूल्य केवल मंच अनुष्ठान से दर्शकों द्वारा अनुभूत किया जा सकता है।

पर ऐसा भी कहा जाता है कि कुछ ड्रामा' अपने साहित्यिक स्तर पर नियंत्रित होते हैं और रगमच के स्तर पर संरक्षित। दूसरी ओर छीक इसका विपरीत। एक तीसरी ओर भी दिया है—एक ड्रामा रगमच के स्तर में नियंत्रित है और साहित्य के स्तर से संरक्षित। लेकिन किसी एक प्रस्तुतकर्ता ने सहसा उस ड्रामा' का अपना प्रस्तुतिकरण करना शुरू किया। रटनिस्वरूपी के पूर्व धारणा के ड्रामा इस सत्य के उदाहरण हैं। फिर ड्रामा' के मूल्य निर्धारण की स्थिति कैसे पकड़ में आये ?

इस स्थिति के उत्तर में ड्रामा और उसकी कलात्मक नतिवता का सिद्धांत रखा जाता है कि एक ड्रामा का प्रस्तुतिकरण उसका साहित्यिक मूल्य के साथ दर्शकों को सहज मनोरंजन देना भी है। दूसरा ड्रामा जग कि 'हैमलट' अथवा अन्य कोई उच्चतम गुणान्तर्की के प्रस्तुतिकरण को देखते हैं तो मनोरंजन से आगे कोई और गहन सत्य हम स्पष्ट कर जाता है। अर्थात् इन ड्रामा में ड्रामा-लेखक और अभिनय दोनों हम मनोरंजन से गहन कोई और अधिक मूल्यवान् सत्य दे जाते हैं। अब प्रश्न है कि दर्शक ड्रामा से क्या मनोरंजन मात्र चाहता है अथवा प्रथम आग कुछ और गहन मूल्यवान् सत्य ? स्वभावतः यदि और सौन्दर्य-बोध के अनुभूत नये प्रश्न के अलग अलग और भिन्न भिन्न उत्तर होंगे। वेन जॉर्जन ने कहा है कि ड्रामा का मूल्य 'मनोरंजन और शिक्षा देने में है *Delight and Teach*। मॉलीयर ने कहा—ड्रामा आनन्द और मनोरंजन मात्र के लिये है। अरस्तू ने ड्रामा को रेखा सिद्धान्त के अन्तर्गत रखकर देखा है।

ड्रामा की शिल्पविधि

ड्रामा की रचना करते समय उसका रंग और व्यक्तित्व के लिये इन तीन तत्वों की आवश्यकता पड़ती है

○ वण्य विषय (थीम) जो ड्रामा का मूलधार होगा—विचार और विषय की दृष्टि से।

○ चरित्र जिससे माध्यम से वण्य विषय की अभिव्यक्ति होगी और तत्त्वस्वरूप ड्रामा चरित्राव्यक्त होता है।

○ कथोपकथन जिसके द्वारा ड्रामा को व्यावहारिक अभिव्यक्ति प्राप्त होगी है।

अतस्तू १ ड्रामा के निम्नलिखित तत्व बताये हैं

कथा

चरित्र अवस्था पात्र

भाषा

विचार

संगीत

दृश्यता।

और इन सब के अंत में उसने स्पष्टतः यह कहा कि ड्रामा में सबसे आवश्यक और प्रमुख तत्व है घटनाओं का चयन। क्योंकि दुखानकी सम्पूर्ण अनुकरण है—केवल मनुष्य का अनुकरण नहीं बल्कि यह जीवन में कार्यों का अनुकरण अधिन है। और जीवन क्या है—कार्यों का समूह।

अतस्तू ऊपर के तत्व ड्रामा की शिल्प विधि की दिशा में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि 'ड्रामा कथोपकथन के माध्यम से कहानी प्रस्तुत करने की एक कला है अतएव कथानक ड्रामा का मूलधार तत्व है। किन्तु ड्रामा का व्यावहारिक सम्बन्ध थियटर और मंच से है, और मंच एक ऐसा स्थान है जिसका सीधा सम्बन्ध दर्शकों से है—एक रंगमंच जो ड्रामा के अनुष्ठान को दर्शन और सुनन द्वारा प्राप्त है। फलतः ड्रामा में प्रेक्षणीयता, वाच्य, दृश्य अभिनयात्मिका कृति, ये समस्त तत्व निम्न १ आवश्यक हैं।

ड्रामा के तत्वों का अध्ययन

ड्रामा के उन तत्वों का जानना आवश्यक है जिनसे ड्रामा की संरचना

होती है, और जिनसे ड्रामा को एक विशय स्वरूप और प्रभाव मिलता है। पिछले ही पृष्ठों में हमने देखा है कि भरतसूत्र न ड्रामा के छ मूलभूत तत्त्वों को बताता है

कथावस्तु

चरित्र

विचार

भाषा

संगीत

दृश्यता

ड्रामा के ये मूलभूत तत्त्व एक तरह से आदिम तत्त्व हैं। आधुनिक समय में इन तत्त्वों में काफी हर फेर की गुंजायमान है, तथा इनमें से कई तरिका पर विचार विनिमय और अभिप्रेरणा भी प्रकट की जा सकती है। किन्तु अध्ययन की गरिमा के लिये भरतसूत्र के बताये हुए इन तत्त्वों को ही आधार बनाय रखना ज्यादा उचित है।

कथावस्तु

भरतसूत्र न कथावस्तु को अत्यधिक महत्त्व दिया है। कथावस्तु के प्रति उसकी अवधारणा भी काफी सन्निष्ट है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित ग्यारह पक्ष सन्निहित हैं जो ड्रामा की संरचना से गीधे सम्बंधित हैं

उदघाटन (एक्सपोजीशन)

अवेषण (डिक्वरी)

आक्रमण बिन्दु (क्वाइट आफ अटक)

पूर्व छाया (फोर गडार्डिंग)

संकट (कॉम्प्लीकेशन)

चरमसीमा (क्लाइमैक्स)

संघर्ष (कॉन्फ्लिक्ट)

निवृत्त (डिनाउमट)

कान अविनि (यूनिटी आफ टाइम)

स्थान अविनि (यूनिटी आफ प्लेस)

काय अविनि (यूनिटी आफ ऐक्शन)

कथावस्तु के इतने पक्ष किमी न किसी रूप-स्तर में गभी महत्वपूर्ण ड्रामा में

मीकृत रहते हैं। किन्तु प्रायः यह भी दिया जाता है कि ये पक्ष इस क्रम से सभी ड्रामा में समान रूप से विद्यमान रहे—यह कोई निश्चिन नहीं है। उदाहरण के लिये चरम सीमा और सघन एक ही बिन्दु पर घटित हो सकते हैं। और उदघाटन का इस्तेमान पूर्व छाया के रूप में हो सकता है। फिर भी कथावस्तु से सम्बन्धित इतनी सामग्री ड्रामा भरचना के मूल पक्ष हैं।

कथावस्तु की महत्ता भरस्तु के इस कथन से स्पष्ट है जहाँ वह प्लॉट का दुःखान्तकी का जीवन और आत्मा मानता है। प्लॉट से भरस्तु का तात्पर्य मात्र कथा या कहानी से नहीं है, बल्कि प्लॉट उसकी दृष्टि में वह महत् मध्य है, जो ड्रामा को स्वरूप प्रदान करता है।

कथावस्तु की संरचना-मदति में आदि से अब तक स्वभावतः विभिन्न रूप बदलें हैं। ग्रीक दुःखान्तकी में कथावस्तु का सीधा और कसावदार होना जहाँ इसका प्रथम रूप था वहाँ इसी का रूप मध्ययुगीन ड्रामा में ढीला और फलावदार हो गया। आगे उत्तरोत्तर इसका रूप सश्लिष्ट हुआ। जीवन के दैनिक यथावत-खंडों से छनकर इसका निर्माण हुआ। कथावस्तु से ज्यादा विषयवस्तु की महत्ता मिनता भी सभी के अनेक रूपों में से एक था। फिर आज ऊल जलूल (एटीडामा) में कथावस्तु के सारे स्वरूप में ही नान्ति के चिह्न दगन का मिने। फिर आया एपिक ड्रामा जिसमें निश्चिन कथावस्तु के प्रति कोई आग्रह नहीं रहा। किन्तु इन सब विभिन्नताओं के बावजूद कथावस्तु के मूल पक्ष सब प्रविद्यमान रहते हैं। कारण, ड्रामा में जीवन और व्यक्ति का जो सघन बिन्दु निष्पन्न के जा दण आचारभूत ढंग से मीकृत रहते हैं उन्हीं में से प्लॉट की मूल स्थिति स्वभावतः पदा हो जाना है। इस मूल स्थिति के लिये सोफोक्लीज (ग्रीक) और शकस्पियर (एलिजाबीथन) जैसे नाटककार, चरित्र के चारा चार ऐसी परिस्थितियाँ चान थे, जहाँ उस चरित्र के मापन निष्पन्न करने में लेने के बीच एक घोर मगम दिडता था। एटिगनी, हैमलट, आडिपस—सब एम ही चरित्र तो हैं।

कथावस्तु नाटक का वह मूलाधार है जहाँ से नाटक का सारा विकास, उसकी सारी परिणति और सभावनाएँ अपन लिय ठाम भूमि पानी हैं। कथावस्तु ही नाटक में घटित ममस्त घटनाओं और कार्यों की ममुचिन व्याख्या और मयशाघ दनी है। नाटक से उठे अनजानके प्रश्नों के उत्तर इसी कथावस्तु-नरत्व में मिलते हैं। क्या आडिपस जसा महान् राजा इस तरह मघा हाना है और स्वयं निर्वाणित होना है? 'डात्म हाउस में नौरा को ऐसा क्या हो जाना कि वह

अन म अपने उस घ्यारे परिवार को त्यागकर चली जाती है ? क्यावस्तु इन सारे प्रश्नों के समुचित विन्वासपूर्ण उत्तर देती है—बारी बकासत करके नहीं, किन्तु छोटी छोटी घटनाओं कायों और व्यापारों की ठोस नज़ीर पेश करके—ऐसा तमाम नज़ीरे जो उस माझात जीवन में और उसके मयाय में मिलते हैं।

क्यावस्तु में इनका अय-बोष इतनी सरचना गति और प्रभाव उसकी कुछ निहायत विशेषताओं के कारण पैदा होता है, जिनसे उसका संगठन किया जाता है।

उदघाटन

जब किसी ड्रामा का पर्दा उठता है और दशक गण मंच पर नाट्य का प्रारम्भिक व्यापार दखने-नमन के लिये आनुर हो उठते हैं तभी नाट्यकार के सामने दो महत्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं—प्रथम, दशक का समूचा घ्या वह कसे अपने नाटक के प्रति सीधे ले। दूसरे वह किस तरह अपने नाटक की वह सारी पृष्ठभूमि दर्शकों को जता दे ताकि वे पात्रों के पारस्परिक संबंध का ज्ञान लें नाटक के मूल प्रश्न से उनका नाता जुड़ जाय और वे इस तरह नाटक से सम्बद्ध हो जाएँ। यही नाटक का उदघाटन है।

डाल्फ हाउस में मिलकुल प्रारम्भ में ही नाटक का पर्दा उठने ही दमन किस तरह नाटक का उदघाटन करता है यह बड़ा ही बखारमय उदाहरण है। बगमद की घटी बजती है। नोरा का प्रवेश। पहनाव पे लगता है, वह बाहर से आ रही है। उसके हाथ में बड़े पबेट्स हैं जिन्हें वह टेबिल पर रखती है। प्रवेश का दरवाजा खुला रह गया है, जिसमें एक जुली लिफाई पड़ता है जिसमें हाथ में एक निमनस ट्री है और एक बास्केट है जिसमें वह नौकरानी का दाना है नौकरानी जिसने घटी बजने पर घर का दरवाजा खोला था।

नारा कहती है—एलिन सावधानी में निमनस ट्री को छिपाओ। और दबो नाम में पहने बच्चे किसी तरह भी इस न देख पायें।

फिर वह जुली स खूबती है—कितनी मजदूरी ? जुली बताता है पचास 'घोर'। नोरा कहती है ना ब्राउन (पचास घोर से ज्यादा, घोर शेष रजगारी भी नहीं लेती)। कुली घबराद दबकर चला जाता है। नारा दरवाजा खुलवा देती है। वह बहुत गुण है। सामान में स मबायस का पबेट निहायती है, घोर दशक अपने मुँह में छान लेती है। फिर वह पत्र पर चढ़ती हुई बहुत माहिस्ता में अपने पति के दरवाजे पर जाती है और मुनती है। पति कमरे में

हो है। वह गुनगुनान लगती है। भीतर स पति की आवाज आती है मरी लाक, मेरी गिलहरी आ गयी नुम ? नोरा बनाती है, वह अभी अभी आयी है। और यह कहती हुई यह मेराएन को पैकेट में छिपाती है और अपना मुह पाछनी है। पति स कहती है—आओ दखो मैंने क्या क्या खरीदा है। पति जवान दता है—अभी बिघ्न मत डालो और थोटी देर बाद पति दरवाजा खोलकर प्रवेश करता है। कहता है—क्या मरी भोली पिङ्गलखच बोबी न सब कुछ। फर उडा दिया ? नोरा कहती है—थोडा खच कर लिया जाय, फिर थोड हो दिना म तो मुम खून घन बमामोमे। पति कहता है—‘उसके लिये तो अभी तीन हप्ते की देर है। नोरा कहती है—‘कोई परबाह नही, तब तक के लिये उधार ल लेगे।’ पति नोरा के पास जाता है और प्यार से उसके कान पकड़ता है।

इस दृश्य के बाद नोरा की पुरानी परिचिता स्त्री आती है—जो इधर बहुत दिना स बाहर थी। स्वभावतः उससे सारी पिछली बात बताने की स्थिति (उद्घाटन) दमन डूब जाता है। बीती हुई घटना प्रकट हो जाती है और नाटक की अपना सही प्रसंग प्राप्त हो जाता है। साथ ही नाटक के विषय, समस्या, बानावरण, पृष्ठभूमि का समुचित संकेत मिल जाता है। पात्रों के पारस्परिक संबंध और उनके निजत्व का भी किंचित बोध हो जाता है।

उद्घाटन का यह पक्ष अनेक नाटककारों में तरह-तरह के ढंग से प्रतिक्रिया होता है—सब गिल्प भी विभिन्न हैं, पर हमकी आवश्यकता सब समान है।

अवेपण

नाटककार का दक्ष क प्रति यह दायित्व है कि वह अनेक सूचनायें तलान करके प्रकट करे ताकि विशेषकर विभिन्न पात्रों के व्यक्तित्व का ध्यान वह दे सक। कौन पात्र क्या इस तरह व्यवहार कर रहा है उसकी मनोवृत्ति क्या है, क्यों है इस सबका अवेपण वह दक्ष के सामन प्रस्तुत करता है। सबसे सन्तोषप्रद और कलात्मक अवपण वह है जो पात्र द्वारा स्वयं प्राप्त किया जाय ताकि उन्हीं स दक्ष अपनी समझना बटा सक, यही अवपण प्रभावपूर्ण और स्वाभाविक होता है। उदाहरण के लिए हैमलेट में सितन स्तरा में धीरे धीरे सत्य का अवपण होता है। राजा का प्रेत रहस्यावधान करता है। मनाडियस के अपराध का पता चलता है। आर्पोलिया का पागलपन उसकी भावमहात्मा, हैमलेट की हत्या की साजिश पलायन की वह रहस्यमयी मृत्यु वह विपाक तत्वार और पीन न पानी में घुला हुआ वह विष, अवपण की

इतनी बड़ी भूमिका आदि से अन्त तक ।

उन्पाटन का क्षेत्र मूलतः सामान्य सूचनाओं के बाध तथा पृष्ठभूमि जान तक ही सीमित है, जबकि अन्वेषण पक्ष का क्षेत्र वर्तमान से हाकर आन वाले भविष्य में घटन वाले सत्य तक फैला हुआ है । उदाहरण के लिए, डाल्स हाउस में नारा द्वारा अपने पति के वास्तविक चरित्र का अन्वेषण ।

आक्रमण बिन्दु

डामा (नाटक) में उन्पाटन तत्त्व प्रतिष्ठित हान व बाध उमका रूप तक उस नाटकीय पक्ष के लिए बिलकुल तयार हो जाता है जहाँ में नाटक का महत् बिन्दु गुरु होता है । इस महत् बिन्दु को आक्रमण बिन्दु कहते हैं । यही बिन्दु नाटक के मूल काय का आधार बनता है । आक्रमण बिन्दु नाटक में उस उस स्थिति को कहते हैं जहाँ से नाटक के मूल संघर्ष पर प्रदत्त का संगम का और रहस्य का आघात पड़ता है । उत्तजना और वस्तुस्थिति में एक विचार जहाँ में गुरु होता जाता है, यही है आक्रमण बिन्दु । जहाँ 'हैमलेट में हारे-गिया हैमलेट के पिता का प्रेत दायता है, आयेना जहाँ डेन्डेमाना से याह करता है । त्रियान जहाँ पोनिनायक की लाश को दफनान में मना करता देता है । डाल्स हाउस में जहाँ राक्सगर्ड नीरा व रहस्य उन्पाटन की घमकी देता है । आडिपेम रेक्स' में जहाँ राजा आडिपस प्रजा को प्लेग से मुक्ति के लिए उनसे वजनबद्ध होता है । ये सब नाटक में ये महत् बिन्दु हैं । कारण और नाट्य स्थितियाँ हैं जहाँ से नाटक का मूल काय ठीक उसी तरह से गुरु हो जाता है जैसे पत्नी में भाग छुपान में सारी आग सहसा भीतर बाहर फल उठती है । और वह भाग तब तक नहीं खत्म होती जब तक उसकी पूरी प्रक्रिया, उसका पूरा काय न सम्पूर्ण हो जाय ।

पूर्वछाया

नाटक एक काय है । और यह महत् काय, छाये छाये अतस्य कार्यों, व्यापार तथा घटनाओं में निहित होता है । नाटक में इस काय की निश्चिन् पूर्व योजना होती है । जो आगे घटन जा रहा है उस पूरे बिन्दुगतोय बनाने

के लिये गुरु स ही उसकी तयारी होती है। जीवन में अनन्त घटनाएँ, बातें और काय क्लिप्तुम अप्रत्याशित रूप में, बिना किसी पूर्व सूचना के घट जाती हैं। किंतु नाट्य रचना में यह सम्भव नहीं। क्या-नाटक का सम्बन्ध सीधे दर्शक की संवेदना से है। उसमें विदग्धता और प्रतीति से है। इसलिए नाटक में जो पन, ता परिणाम, जो काय भविष्य में आने वाला है उसका बोझ राखण पढ़ने ही हा जाता है।

इस कला योजना से नाटक में विन्यास और प्रतीति के अतिरिक्त कई अन्य उपरति घटा है। जैसे नाटक में विन्यास और कौतूहल का निर्माण उसकी संवेदना में एक मानवीय गति का संचार और अंततः उसमें एक नाटकीय तनाव के तत्त्वा की प्रनिष्ठा। 'हैमलेट नाटक के गुरु की तीस पत्निया में 'मयावह दृश्य के लिये अनन्त प्रसंग, चर्चा और दान उठती है जिससे एक वातावरण बनता है और हैमलेट के पिता के प्रेत के प्रवेश की पूर्व स्थिति तैयार करता है। 'डॉल्स हाउस में नारा के पहलू प्रवेश में छिपान की ही धार में उसका कथन गुरु होता है। मकान को छिपाकर सान से दर्शक उसमें चरित के इस पक्ष के उन्पादन के लिये वित्तुल तयार हा जाना है, और उस वहा विश्वस्त आनन्द मिलता है जहाँ नाग की यह वही चारी और छल उन्पादित हाता है कि उसने ता अपने पिता के जागे वस्तुवत कर रख है। 'हैम गन्तर' में पिस्तौल नाटक के काय-व्यापार में वह पूर्वस्थितिया में घाया ह—वही पिस्तौल, जिसमें अंत में हठा आत्म हत्या करती है।

संकट

आक्रमण बिन्दु में ही नाटक में संकट की गुरुप्रान हा जाती ह। पहला संकट वस्तुतः वही घटना है। उसी संकट से स्थिति उत्तरात्तर जटिल हाती जाती ह। जितना बड़ा यह संकट हाता है जितना मानवीय और जीवन्त ही उसी अनुपात में नाटक थप्ट होता है। वस्तुतः संकट के क्षण ही नाटक में नाटकीय तत्त्व उजागर करत है। उही स्थितिया में चरित्रा का अन्वेषण होना है। नाटक के व्यापार में गति आता है। और नाटक की कला अन्त की धार वही तडी से बन्ती हूँ प्रभाव हाती है। अन्वेषण, इत्यन्त आ नील मुम्पन इन तीनों नाट्यकारों में संकट के तत्त्वा का पूर्ण कलात्मक प्रयोग अन्त नाट्य-कृतिया में किया ह। गमिया एन जूलियट नाटक में रामिया जूलियट से प्रेम कर बैठता है। लेकिन स्थिति में संकट उत्पन्न हाता है, क्या-कि दाना

परिवारो ॥ दुःखनी थी । रोमियो जूलियट का पाने के लिये टाइट्याल्ट को हत्या करता है । इससे मकट और गंभीर हो जाता है । रोमियो का बहिष्कार होता है । जूलियट का पिता अकिलम्ब अपनी पुत्री की दूसरी जगह गादी करना चाहता है । इस मकट से बचने के लिये जूलियट अपनी मृत्यु का स्वागत रचती है । किन्तु इस रहस्य-योजना का पत्र रोमियो का नहीं मिलता । मकट तीव्रतर होता है । रोमियो समझता है कि उसकी प्रिया जूलियट सचमुच मर गयी । वह इस विप्लव में उमके नाम बटकर बिप पी लेता है और उमकी मृत्यु हो जाती है । जूलियट जादुई मृत्यु से उठकर जब प्रियनम की यह ज्ञाता दपती है, तब उमके मामन मकट तीव्रतम हो जाता है और वह भी मृत्यु का प्राप्त होती है ।

मकट की परिस्थितियों के माध्यम से ही वास्तव में कथावस्तु की सरचना होती है । ग्रीक और मल्लिजादीयन युग के नाटक इस पक्ष में सर्वथा परिपूर्ण हैं ।

चरमसीमा

काय की चरम परिणति को चरमसीमा कहते हैं । जहाँ द्रष्टा मयका सघन तनाव की उच्चतम स्थिति में पहुँचना है । नाटक में इसी चरमसीमा बिन्दु का सूत्रित ध्यान में रखकर अनन्त नाट्याचार्यों ने नाटक के पूरे सगठन को इन्हा पाँच चरणों में ही बाँटकर देखा है

- भूमिका
- विकास
- चरमसीमा
- प्रत्यावर्तन या पतन
- प्रत्यय

चरमसीमा नाटक के मगठन में निश्चय ही उच्चतम बिन्दु है । यह उच्चतम बिन्दु नाटक के प्रत्येक दृश्य अनुक्रम और अंक की छोटी छोटी चरम सीमाओं से विरमित होता हुआ अन्त में निर्मित होता है । वस्तुतः नाटकीय चरमसीमाएँ प्रतिष्ठित हैं उम कलात्मक यात्रा के, जहाँ काय और घटनाएँ एक के बाद एक पर अपनी स्वाभाविक परिणति को प्राप्त होती हैं । और नाटक का तनाव उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है । 'हात्स हाउस' में चरमसीमाओं की यह कलात्मक यात्रा देखी जा सकती है ।

- रागस्टाड नोरा के रहस्योद्घाटन की घमकी देता है ।
- नोरा अपने पति हैल्मर से रागस्टाड को न निकालने के लिये वकालत करती है और असफल होती है ।
- रागस्टाड वही भयानक पत्र हैल्मर को लिखता है ।
- नोरा पूर्ण प्रयत्न करती है (नाच गाकर तक) कि पति वह पत्र न पढ़ सके ।
- पति उस पत्र को पढ़ता है तथा पत्नी (नोरा) का बलवर्धन करता है ।
- रागस्टाड का दूसरा पत्र पति (हैल्मर) की इच्छा और नाम को बचाना है ।
- नोरा अपने उस घर त्याग के निणय को पति से बताती है ।

‘डाल्स हाउस’ नाटक की ये सारी चरमसीमायें नाटक के उसी मूल काय से संबंधित हैं, जहाँ भावना का क्रमिक विकास अपनी स्वाभाविक परिणति को सहज ही प्राप्त होता है ।

संघर्ष

संघर्ष और चरमसीमा ये दोनों नाट्य बिंदु प्रायः एक दूसरे से भिन्न हैं । इन दोनों की प्रतिष्ठा कभी कभी एक ही स्थान पर हो जाती है फिर भी संघर्ष नाटक में उस स्थल पर आता है जहाँ मूल चरित्र के सामने किसी एक निणय के विरुद्ध संघर्ष उत्पन्न होता है । यह संघर्ष इस नाटक की आत्मा की चरमसीमा भी हो सकती है । वस्तुतः संघर्ष में दो विरोधियों के स्वाय की टक्कर होती है । एक ऐसा बिंदु जहाँ किस्मन का, सकल्प का अन्तिम फल होना पड़ता है । हैमलेट के हाथ में तलवार है, बलाउडियम में केला अक्षत पूजा कर रहा है हैमलेट अपने उभय भयानक शत्रु का मारे या न मारे । नोरा को फसला लेना है, वह अपने उस घर और पति का त्याग दे या नहीं ।

यह संघर्ष कभी चरित्र स्वयं निर्मित करता है, या उसपर परिस्थितियाँ द्वारा दबाने दिया जाता है । वह चरित्र उस संघर्ष स्थिति में जा निणय लेता है, यही प्रायः नाटक में काय का अन्तिम आधार बनता है ।

निवहण

नाटक के अन्तिम फल का निवहण कहते हैं। जो समस्या नाटक में उठी थी उसी का हल। 'डाल्स हाउस' में मोरा अपने घर का त्याग कर चली जाती है। हैडा गम्बर में हैडा आत्म हत्या करती है। आडिपस रेक्स में राजा आडिपस आत्म निर्वासित हो जाता है। रामियो एण्ड जूलियट में प्रेमी और प्रेमिका का मिलन मृत्यु के उस पार होना है। 'यू थाप ए सल्मन' में विनी नामन की बार लड़ती है और उसकी मृत्यु होता है—यह सूचना उस घर में आती है।

सधप व बाग्ल नाटन में जो तनाव दिखाया निवहण त्रिदु पर आकर उस सधप की परिसमाप्ति हो जानी है। सधप से शांति।

सुगान्तकी का निवहण कठिनाइयाँ को पार करना हुआ उसे हल करता हुआ अन्त में प्रेमी और प्रेमिका के मिलन में होता है। उनके ठीक विपरीत दुगान्तकी में सत्रका करण अन्त होता है।

प्रवृत्तियाँ

नाट्य प्रवृत्तियाँ की चर्चा पहले हो चुकी है। यहाँ इस प्रसंग में यह कहना आवश्यक है कि ड्रामा की संरचना में किसी न किसी स्तर में प्रवृत्तियों की प्रतिष्ठा आवश्यक है। विगंधकर काय की प्रवृत्ति की। यद्यपि यह बड़ा मनोरंजन प्रिय है कि जिस अरस्तू ने पहली बार नाट्य प्रवृत्तियाँ की चर्चा की है उसने केवल 'काल और काय' की ही प्रवृत्तियाँ की बात उठायी है।

रैना के बाल के नाट्याचार्यों ने देखा, काल काय, इन तीनों प्रवृत्तियों की चर्चा की है—और तभी में इन्हें कवस्किस्स यूनिटीज की मना प्राप्त हुई है।

वस्तुतः नाट्यकार आचार्यों के बनाए हुए नाट्य विद्यालया के आधार पर नाटक रचना नहीं करते बरन वे अपने समय के रंगमंच की वास्तविक माँग के अनुरूप नए नाटक की रचना करते हैं।

काय की प्रवृत्ति व विषय में अरस्तू के जो विचार थे, उनका उल्लेख विशेषकर एलिजाबेथन रंगमंच काल में बतौर हूँ है। गरल-सहज कथावस्तु व स्थान पर कठिन मिश्रित कथावस्तु का निर्माण, तथा सुगातकी-सुगातरी व तत्त्वा का परस्पर मिश्रण। मध्ययुगान सुगातकियाँ में यम्भोर नाट्य-तत्त्वों

का मेल भी एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। जापान के 'काबुकी' ड्रामा में भी यही मेल्य रूप से मिलना है।

चरित्र

चरित्र के माध्यम में ही कथावस्तु बनती है। चरित्र का व्यक्तित्व दसकी इच्छा-शक्ति ही नाटक का सारा काय-व्यापार है। नाटक के अर्थ तत्त्वा के अनु रूप ही चरित्र के अनेक रूप, उनके निमाण के विभिन्न गित्य नाट्य-माहित्य में व्यक्त को मिलते हैं। ग्रीक, एलिजाबीथन और जापानी नाटका में स्त्री पुरुष की भूमिनाएँ पुरुष अभिनेताओं द्वारा अदा की जाती थी। मध्ययुगीन नाटक में चरित्र का स्वरूप प्रायः प्रतीकात्मक हो गया था। आधुनिक युग के नाटक-कारों ने चरित्र का पूरात यथाय धरातल से ग्रहण किया है और उसके व्यक्तित्व की 'ग्राफ' गहराई में ख गाए हैं। चरित्र के मनोविज्ञान में पठकर उसके अंतर्गत स्वरूप को ढूँढा है। स्वप्न, ओ नील, स्टिबग, चखव, आदर मिलर और जे पाल सान तथा टनिसी विलियम ने यथाय जीवन और जगत के पूरा जीवन चरित्रों का उनकी सारी मानवनात्मक सीमाओं और सम्भावनाओं के साथ अपने नाटकों में उपस्थित किया है।

रचना गित्य की दृष्टि में चरित्र रचना प्रायः चार पक्षा से की जाती है। चरित्र रचना अपने बाह्य स्वरूप से। चरित्र की शारीरिक दशा, वन भूपा, उन्न भागि जिनके आधार में दणक या पाठक तत्काल चरित्र से सीधे परिचित हो जाता है। इस पक्ष के कारण और सूक्ष्म विवेचन में आधुनिक यथायवाणी और विनोदकर प्रवृत्तियों की नाटककार बहुत ही ममता है।

भाषा—शैली दूसरा पक्ष है, जिसके द्वारा चरित्र का उन्पाटन होता है। चरित्र जिस तरह की भाषा इस्तेमाल करता है जिस तरह वह बातना है, जसा उसका उच्चारण है वानी की गति है जमी उसकी आवाज है इन सबके द्वारा चरित्र की पहचान बहुत ही स्वाभाविक है।

यथायवाद के पूर्व तक नाटककार चरित्र उन्पाटन के लिए स्वगत कथन और जनानिक का इस्तेमाल करते थे लेकिन जय में नाट्य-क्षेत्र में सत्याग्राम का चरण आया है उस माधन प्रायः छाट गि गाय है।

इसकी पूर्ति के लिए काय आ गया है। चरित्र अपने व्यवहार में अपने छोटे छोटे कायों में अपने व्यक्तित्व की, मनोभाव की सारी सूचनाएँ दे जाना है। यह तीसरा माधन है चरित्र निर्माण के प्रसंग में।

चोये प्रसंग में वह पक्ष आता है कि अमुक चरित्र के बारे में पात्र क्या कहते हैं और उसके लिए वे क्या विचार और प्रतिनिधिया रखते हैं ।

यस्तुतः नाटक के मयूक शिखर पर चरित्र की स्पष्टता, निश्चित रूपता निर्भर करती है । जो नाटक मूलतः प्रस्तुतिकरण के लिए उसी की सारी व्यावहारिक आवश्यकताओं के बीच से लिखे गए होते हैं उनमें चरित्र बड़े ही समृद्धिवाली व्यक्तित्व और निजत्व के हात में और उनमें एक अजब रंग और प्रभाव होता है । क्योंकि तब ऐसे चरित्र काय' के बीच अपना सहज निर्माण पाते हैं । उदाहरण के लिए हैमलेट का चरित्र इतना विशाल और मनोरंजक इसी लिए है कि वह विभिन्न स्थितियों और दृष्टिकांशों में विभिन्न पाना के सदम सूत्रों में देखा और समझा जाता है । हैमलेट और प्रत हैमलेट और हारे गिया हैमलेट और आफीलिया हैमलेट और गदूड, हैमलेट और फ्लोन्डिस आदि । हैमलेट के इस विभिन्न व्यक्तित्व की तुलना में जब हम ग्रीक ड्रामा के ओडिपस का चरित्र देखते हैं तो स्पष्ट होता है कि कितने सीमित सन्दर्भों में दृष्टिकांशों में यह चरित्र वही चित्रित हुआ है ।

विचार

विचार-तत्त्व अस्तू के अन्त में (डाइलॉग) आता है उस अंग से संबंधित है, जहाँ नाटक में जितना तर्क, विचार-तत्त्व है । विचार-तत्त्व बौद्धिक तत्त्व से बड़ी पर्याप्त ऊपर है—असा अस्तू ने बात की निवेचना में स्पष्ट किया है ।^१

1 Dianoia (Thought) in the sense it bears in the poetics is like Ethos (Character) an element in the personality of the dramatic personae. It is their intellectual capacity as evinced in their language (or may be in their action), and it is to be seen whenever they argue or make an appeal to the feelings of their hearers in other words when they reason or plead with one of the other dramatic personae in the same sort of way as a rhetor might do.

क्याकि नाटक केवल वस्तुगत विचार विनिमय नहीं है। नाटक में जो कुछ घट रहा है, चरित्र जितना कुछ मघप कर रहे हैं, जो कुछ पतित हो रहा है समूचे नाटक में—वह सब बुद्धि के पर की शक्तियाँ के कारण अत्राय परिस्थितया और स्थितियाँ की वजह से हो रहा है। जिसमें भावना इच्छाशक्ति मनामात्र मना विज्ञान का उद्भूत बना हाथ है—इतना उदा कि वह सब तक की कसौटी पर नहीं बना जा सकता। 'डाल्म हाउस' में भाग धर त्यागकर चली जाती है—इस काय के लिए भावनामा और अन्त मघपों की वह पूरी विवाद तमारी समूच नाटक में जीवन प्राप्त है।

चरित्र के नक्शे, विचमनीय व्यक्ति-विमाण के अनिरित्त 'विचार' का सम्बन्ध नाटक की विषय-वस्तु से है—जहाँ नाटक की सारी समस्या, पूरा विषय एक विचार का म बाधा का सन्तता है—जैसे मकसद' के लिए—महत्वादाता नयानक है। डाल्म हाउस में, स्त्री-पुरुष की सममानता वदाहिक जीवन का तात्पर्य बानी है।

किन्तु मघमुच श्रेष्ठ नाटका में उसका विषय और तथ्य को जतनी आसानी से नहा पकड़ा जा सकता है। उनमें अन्त मघ हात हैं। उनकी अन्त व्यवस्थाएँ होती रहती हैं—जैसे स्त्रीत्वात् नमः स्त्रियात् म प्रत्यक्ष एक व्याख्या नाटक का पठकर मिलती है किन्तु मघया उसमें अन्त दृष्टि एतिया वज्ञान अपनी प्रस्तुति में देता है। इसी तरह हैमनट 'आदरात्' विधान और मिली नामन का वास्तविक चरित्र क्या है, इसका विषय में अन्त का विवाद चलन ही रहत हैं।

विचार-तत्त्व केवल उपन्यासप्रव प्रचारात्मक नाटका में ही एक निश्चय के साथ पकड़े जा सकते हैं। श्रेष्ठ नाटक जीवन की भी तरह रहन हात हैं—विचार भावना, प्रतिश्रिया, मनाविज्ञान और अन्त प्रभावा से युक्त।

भाषा

अस्मत् न डामा का खोया तत्त्व भाषा बनाया है। वह तथ्य जो पात्रों के मन में मघ पर अभिनता बानता है। यह वह माध्यम है जिसके द्वारा पात्र अपने विचार और अन्त नाटक के विचार दत्त तक सम्प्रपिन करत हैं।

नाटक की भाषा साधी और सरल होती है जो सरल अन्त मघ के साथ दत्त की समझ में आ जाय। नाटक उपन्यास या कविता पुष्पक नहा है कि उमा। व्याख्या के अन्त समझन के लिए तथ्य रंगमंचन में बढकर नाटक के पृष्ठ उन्टकर दत्त गय। यह सम्भव ही नग।

भाषा कथनोपकथन व ही रूप में नाटक में मूलतः व्यवहृत होती है। फलतः स्पष्टता, सीधेपन के अतिरिक्त इस मनोरञ्जक होना आवश्यक है। बरना दर्शक के लिए रुचिकर ही न हो सकेगा। भाषा का जीवन और चरित्र की आत्मा का पकड़कर चलना होता है।

भाषा प्रयोग के लिए नाटककार को कवि की दृष्टि चाहिए। वही गति, वही पठ। ग्रीक और एलिजानीयन महान नाटककार कवि की भाषा और वाणी में ही नाटककार थे। यह स्थिति प्रायः उन्नीसवीं सदी में पूर्व तक रही है।

आधुनिक नाटककार—विशेषकर समसामयिक नाटककार की भाषा में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। साहित्य में यह बोलचाल की भाषा-स्तर पर आया है। उमम आचलिक तत्त्व भी उभरे हैं। अभिव्यजनावाणी नाटक में भाषा के स्वरूप में बड़ा महान् चित्र उभरा है। 'एरीएण' और 'कमीनीरियल' नाटक की भाषा इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। भाषा प्रयोग से ही नाटक में चरित्र का मन स्थिति और नाटक की प्रति की सीधे पान और प्रभाव मिलता है। स्ट्रीटकार नष्ट डिजायर की भाषा में एक और यथाप जीवन की बोनी जान वाली गालियाँ भरी पडा है दूसरी ओर उस भाषा में नाटक का काम उभर रहा है। भाषा प्रयोग के ठीक विपरीत बर्तन फार गादो नाटक की भाषा है। वह ठंडी भाषा। दो-तान गाना से अधिक बड़े वाक्य ही नहीं हैं। जैसे भाषा में वही ठंडा इतजार स्वयं धा बसा है। नाटक जहाँ में शुरू होता है वही समाप्त हो जाता है—भाषा यहाँ बीच में गहरे ठंडे पानी की पतली धार की तरह थमी हुई है—ऐसा लगता है बर्तन फार गोना की भाषा पढ़कर और सुनकर।

वेकट आर्नल्डो और पिटर आदि समसामयिक नाटककारों ने भाषा प्रयोग में किसी भी परम्परा और सिद्धांत का पालन नहीं किया है। इसी भाषा में विराम और टूटते हुए गाना व जो प्रयोग हुए हैं उनमें उत्पन्न नाटकीयता उल्लेखनीय है।

संगीत

परन्तु व अनुसार यह पाँचवाँ तत्त्व नाटक में उन सब अर्थ तत्वों को समेटकर उभरता है जो नाटक प्रदर्शन में प्रकट होते हैं। यानि प्रभाव, भाषा बोनी बोलने तथा उच्चारण के लयात्मक ढंग को भी संगीत में ही ग्रहण किया

गमा है। साथ ही सगीन में ध्वनि और वाणी के स्वरक, बलाघात, धनत्व लय स्वराधान तारत्व आदि सभी पक्ष आते हैं।

आधुनिक नाटककारों ने, विशेषकर यथायवादी और प्रकृतवादी लेखकों ने संगीत को अनावश्यक समझकर इसे दूर रखा है। यद्यपि 'फिल्म' में इस क्षेत्र में भी इसका खूब उपयोग किया है। फिर भी 'चेखोव' 'ओ नील' 'टैनीसी विलियम', 'मैटर लिंक' 'सोफा' और आर्नेस्ती ने संगीत का काफी इस्तेमाल किया है। अभिप्रेयजनावादी नाटकों में संगीत तत्त्व का काफी अलात्मक प्रयोग होना रहा है।

नाटक में सब तरह के ध्वनि जाने पारा किए गए स्वरा और आवाजों आदि का सीधा सम्बन्ध संगीत-तत्त्व में है। यहाँ तक कि दृश्य में भारी-भरकर तथा आर्केस्ट्रेशन भी संगीत में ही अन्तर्गत है।

दृश्यता

प्रस्तुतिकरण में जितने दृश्य तत्त्व हैं—जैसे दृश्य मञ्चा प्रकार वस्त्र विन्यास रूप विन्यास, रंग-व्यापार और मंच पर अभिनय का गतिमंचार—ये सब दृश्यता में अंतर्गत आते हैं।

दृश्यता में नए युग के रंगमंच में बड़ी विभिन्नता रही है। ग्रीक एलिजाबीथन नाट्य प्लेज ऑफ जापान तथा वाबुकी मंच पर दृश्य विधान की व्यवस्था नहीं थी। फिर भी इन सारे रंगमंच प्रकारों में यह दृश्यता एक दूसरे के स्तर में समाहित हुई है। इन रंगमंच प्रकारों में उत्प्रेक्षणीय दृश्य प्रधान वस्त्र विन्यास होता था। ग्रीक ड्रामा का वह कारण, और वाबुकी में नृत्य एलिजाबीथन मंच का वह पात्र-मञ्चन वह दृश्य-विहित गतिमंचार, यह सब वही दृश्यता ही थी—जो का आविर्भाव करने वाली।

रिनसां के बाद जब रंगमंच में चरण में रंगद्वार का युग शुरू होता है और मंच धीरे धीरे पिक्चर फ्रेम में बँधता गया, तब में दृश्यता के लिए मंच मञ्चा रंग-व्यापन पर बहुत बल दिया जाना लगा है।

ड्रामा मे संघर्ष की स्थिति

ड्रामा' घपन समस्त प्रकारा म (दुःखान्तकी, सुखान्तकी 'मेला'गमा' और फास) साथया किसी न किसी स्तर स संघर्ष की अत प्रेरणा म उत्पत्ति होता है । इस तरह ड्रामा मे संघर्ष का स्थान उन्नत ही महत्त्व और स्तर का है जसाकि मस्कृत रंगमंच म नाटक 'अतगत रस का स्थान ।

वस्तुतः पाश्चात्य रंगमंच मे 'ड्रामा का उल्लेख और नाम 'संघर्ष तत्त्व मे ही है । दुःखान्तकी म संघर्ष की यह स्थिति स्थूल और मानसिक दोनों स्तरा स विद्यमान रहती है । सुखान्तकी मे दो विभिन्न शक्तिया व निजत्व स संघर्ष रहता है—स्त्री पुरुष से संघर्ष, व्यक्ति-समाज स संघर्ष । दुःखान्तकी म दया और भय के तत्त्व इसी संघर्ष के ही कारण उत्पन्न होते हैं । और सुखान्तकी म हास्य का मूल सार भी संघर्ष स निरगत होता है । संघर्ष की इस सदा म प्राय दो स्थितिया होती हैं

○ बाह्य संघर्ष

○ अंत संघर्ष

इस नमस यहिद्वन्द्व भी कह सकते हैं । पूरुषत बाह्य संघर्ष से ड्रामा का स्वरूप निर्मित होता है और उसम हमारा ध्यान सबसे पहले आकर्षित होता है । ड्रामा म वस्तुतः दो स्थूल शक्तिया का संघर्ष है अर्थात् दो चरित्रा का पारस्परिक द्वन्द्व दो मस्तिष्का का संघर्ष, दो व्यक्तिया का संघर्ष और कुछ अन्तर्गत शक्तिया का भी संघर्ष इसम मिला रहता है । इस व्यापक संघर्ष का प्रतीक है ग्रीक पिपेटर का ड्रामा ।

ड्रामा का बाह्य संघर्ष इसका एक आन्तरिक सत्य है विशेषकर दुःखान्तकी म इस संघर्ष का सत्य समान रूप स सदा सन्निहित होता है । इस बाह्य संघर्ष का स्थूल म सूक्ष्म दोनों ड्रामा मे प्रयोग करना एक बहुत बड़े ड्रामा लेखक का काम है ।

दूसरा शिरोन ड्रामा का अन्त संघर्ष है । यह अन्त संघर्ष आकाशवाणी म निर ड्रामा की वस्तुतः सत्य है । और यह अन्त संघर्ष दुःखान्तकी की तो जैसा आत्मा ही है । ड्रामा म अन्त संघर्ष का कलात्मक उल्लेख पहला बार एलि बीना ड्रामा म प्रकट हुआ—विशेषकर शकलियर की दृष्टिगोली लक्षणी म ।

अतः सघष तथा बाह्य सघष की अपना साधन बनाने और उनकी शक्ति को, प्रभाव का अपन में आत्ममान करने अन्ततः दाना का दुस्मान्तकी की आत्मा में परिणत कर देना। उदाहरण के लिए आयेला में हम आयेला और 'इम्राणा के चरित्र द्वारा बाह्य सघष पाने है जिससे सबप्रथम आयेला ड्रामा के प्रति हममें तीव्र आकर्षण पैदा होता है। किन्तु इसका गहरे आयेला का अपना अन्त सघष है जिसकी भावात्मक तीव्रता और उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति में 'आयेला समार का एक महान ड्रामा मिश्र हुआ है। ठीक इसी तरह हैमलट' में हैमलट और घास्ट तथा हैमलट और क्लॉन्डिन्स के बीच बाह्य सघष है किन्तु इस अष्टम दुस्मान्तकी का स्तर स्वयं हैमलट के मन और मस्तिष्क में विद्यमान है। जिस लियर में बाह्य सघष अत्यन्त स्पष्ट और स्थूल धरातल का है कि तु हमें ठीक विपरीत 'मकज्ज' में यह बाह्य सघष जम समाप्त होकर केवल अन्त सघष में समाहित हो जाता है और ड्रामा का सारा मूल्य मकज्ज के हथियार मन मस्तिष्क और उसके पूरे व्यक्तित्व से छनकर उन्मि होता है।

मुस्मान्तकी में ये ज्ञाना प्रकार के सघष अपने दूसरे स्तर से अत्य उद्देश्य के लिए व्यवहृत होते हैं। अतः इनका प्रभाव और परिणाम दुस्मान्तकी से सबथा भिन्न होता है। मुस्मान्तकी प्रथम में हान्य विनाश का साधारणतम और स्पष्ट तम उद्देश्य सूत्र है (विषय के क्षेत्र में) व्यक्ति अथवा पक्ष का समाप्त सघष और वस्तुतः यह सब बाह्य सघष के अंतर्गत आता है।^१ इसमें अन्त सघष की स्थिति नहीं दीय पड़ती। यह सत्य भी है कि मुस्मान्तकी महज साधारण चरित्र का लक्ष्य नहीं जाती है और दुस्मान्तकी अन्तमुखी और सगिनिष्ट पात्रों का लक्ष्य।



1 All Laughter is social in character and that it is fundamentally the reproof of a particular society to any eccentricity on the part of a single person or of a special class

दुखान्तकी

दुखातकी क्या है, इसकी आत्मा और मर्यादा क्या है इसका विवेचन प्राचीनकाल के नाटकारों ने नहीं किया। यह कार्य सम्पन्न हुआ बाण वं दानविका तथा तत्त्वज्ञानियों द्वारा। उन्होंने दुखान्तकी नाट्य कृति के आधार पर उसमें समाहित नाटकीय तत्त्वों के आधार पर दुखान्तकी के कुछ मूलभूत सिद्धान्त बूट निवाल और उनकी प्रकृति तथा मर्यादाओं का विन्नेपण किया।

तत्त्वज्ञानियों का पहला अन्वेषण दुखान्तकी की आत्मा का स्वर प्रारम्भ हुआ। प्रायः सभी परोक्ष-अपरोक्ष रूप से इस परिणाम पर पहुँचे कि दुखातकी की आत्मा करुणा है। बल्कि इस हम या भी कह सकते हैं कि दुखातकी और करुण रस ढाना साथ ही साथ रहते हैं।

करुण रस का जब प्रादुर्भाव होता है तो उसमें साथ साथ मानव की अथ घनभूतियाँ भी वही रस ग्रहण कर लेती हैं और हम तथा दुखी व्यक्ति एक ही वग और श्रेणी में आ जाते हैं।

और भी जब हम किसी दबी अथवा अजीब-पटना तथा कृत्य द्वारा मनुष्य का पीड़ित दुखी और प्रगल्भ देखते हैं तो हममें दबी गति के प्रति एक भय तथा साथ ही मनुष्य के आधार में हममें अपनी हीनता का भाव जाग्रत होता है, तब हम हताश और अभाव होकर उस दबी अथवा अजीब-पटना तथा कृत्य को देखते रह जाते हैं और हमारी ऐसी ही भावना में दुखान्तकी की आत्मा निहित रहती है।

दुखान्तकी की आत्मा

सबप्रथम बहूत ही स्पष्ट रूप में 'हमारे न दुखातकी की आत्मा की बात उठायी। ज्ञान स्वयं विन्नेपण आगे दा भाग में किया। पञ्च भाग में हमारे वा संवसा धार्मिक दृष्टिकोण है तथा दूसरे में गौण-वाच का दृष्टिकोण। विचार और विन्नेपण न दुखान्तकी का मूलधार दाप अथवा घनभूतियता र उभार भीया सम्बन्ध मनुष्य के आचरण में है। बलुत दुखान्तकी की





नेकमपियर रगमच विगुदियर
 जान गिरगुल विगुदियर की भूमिबाम वग भूपा
 रूप मज्जा नागिडकी द्वारा

आत्मा इन अनैतिक दोषों का हल दूँती है। इसी हल को दूँदन में हम ईश्वर के आचरण की भी सीमासा करनी पड़ती है तथा ईश्वर और मनुष्य के सम्बन्ध में हम अपने विचार प्रवर्तित करने पड़ते हैं।

दुखान्तकी की आत्मा के दो मूल तत्त्व

पहला तत्त्व ईश्वर और मनुष्य के सम्बन्ध का अस्पष्ट रहस्य अर्थात् जब हम दुखान्तकी देखते हैं तो आदि में अतः तब यही रहस्यपूर्ण समस्या हमारे सामने रहती है कि ईश्वर तथा भाग्य के हाथ किनने आता तब मनुष्य विवश और बचारा है। फिर भी मनुष्य के अपने प्रयत्न तथा कृत्या में अपने आरक्षी सरिता में पराजित हुआ नहीं सिद्ध कर पाता। उनके बीच हम बाध का कारण से तथा कर्ता का घटनाओं से और इन सब के ऊपर कर्ता और परोक्ष शक्ति में सम्बन्ध जानना चाहते हैं। पर हम उस रहस्यभेद का जानने में सफल नहीं होते। वस्तुतः इसी रहस्यभाव में ही दुखान्तकी की आत्मा स्थित रहती है।

दूसरा तत्त्व दुखान्तकी की आत्मा, सिद्धान्त रूप से यह स्वीकार करके चलती है कि हम मर्मात् में अनतिक्रम्यता है। जबकि दूसरी ओर मनुष्य अपने आप का नैतिक आचरण बाना प्राणी समझकर चलता है और उस दिशा में प्रयत्न करने भी वह रत्ता है। तभी उसका उद्देश्य अनैतिक जीवन में नैतिक जीवन प्राप्त की ओर रत्ता है। इस नैतिक प्राणी मनुष्य में जब कोई दोष भ्रष्टा अनैतिक अथगुण समा जाता है तो दुखान्तकी की आत्मा इसी क्षण इसी भ्रष्टागुण को अपने विरासत रूप में देखनी चसती है। तथा इसी प्रक्रिया में दुखान्तकी की आत्मा की प्रतिष्ठा होती है।

व्यावहारिकता और सिद्धान्त दोनों दृष्टियाँ से मृत्यु ही दुखान्तकी का मूलानार है। यह मृत्यु शारीरिक है हा, यह कोई विषय जान नहीं। यह मृत्यु मानसिक और आध्यात्मिक भी हो सकती है।

भारतीय दृष्टिकोण से इसका अन्तर और तात्त्विक समीक्षा

दुखान्तकी पश्चिमी जगत् की उपलब्धि है। 'दुःख' की व्याख्या है, 'मृत्यु' म उन्ही दुखान्तकी के ही रूप में की। इसका टीका विरचित शास्त्रों में

नाटक की कल्पना 'रम' और 'आनन्द' के रूप में की। इसी कारण पूर्व और पश्चिम में जीवनमन तथा दानगत विभिन्न दृष्टिकोणों में दिये हैं। हमारा आदि से ही यह विश्वास रहा है कि ब्रह्मा—ईश्वर सत्य है। वह सव्यक्तमान और कृपालु है। यह जीवन उसी ब्रह्म की लीला है। फलतः इसका अर्थ आनन्द मय है। ठीक इसके विपरीत प्राक सोमा में उग तरह का कोई सव्यक्तमान ईश्वर न था। न ऐसा ईश्वर की कल्पना ही थी। केवल छोटे छोटे देवता, जिनके स्तर मनुष्य से थोड़े ही ऊपर थे। अतएव वहाँ जीवन सभय और कष्ट का ही क्षेत्र था। वहाँ का जीवन लीला न था वरन् जैसा यथायथ बाहर में था, वही सत्य तरह से सत्य था। वहाँ मुख्य न देवता थे, न मनुष्य वरन् मनुष्य का भाग्य अभी विस्मृत। क्याकि बाइबिल के अनुसार मनुष्य इस पृथ्वी पर (स्वर्ग से पतित होकर) पाप वश (सिन्) आया है। उसने बदविस्मृती में जो अजित फल ला लिया था। मनुष्य कितना भी अच्छा क्यों न हो। भाग्य का विधान उसे निश्चय ही चूर चूर करेगा। यह नियति की बात है। आदिपति राजा में प्रसन्न अपना कोई दोष नहीं है। वह आदि में अतः एक तरह से अनजान, निष्पाप है, पर भाग्य ने उसे जितना अपार कष्ट दिया। क्याकि उसके ऊपर कोई सव्यक्तमान कृपालु ईश्वर न था। यहाँ तो केवल मनुष्य है, और उसके सिवा पर केवल उसकी नियति है, बस। यीशु जीवन धारा का इस दिशा में यह पहलू उल्लेखनीय है।

दूसरी धारा इस दिशा में जुड़ करी थी। कष्ट भोगने की। आगे चलकर इस धारा को धर्मसीमा मिली त्रिदिचयन दान में। विश्वास और विचार में दोनों स्तरों में इस धारणा ने दुःख तबी की कला और दान दाना क्षेत्रों में प्रतिष्ठित किया। आइस्ट हमारे लिए, इस समार के लिए कितना अपार कष्ट सह रहा है। हमारा जीवन सुगमय हो जाय, हम आस और कष्ट में मुक्ति मिल जाय, हमारे लिए आइस्ट अपार सभय सह रहा है। हमारे पापों से हम मुक्ति लाने के लिए वह सत्य प्रयत्नशील है। इस तरह यह 'आइस्ट' एक अमाधारण कष्टानायक है। दुःखान्तर्ही में नायकत्व के पीछे उसी 'आइस्ट' के चरित्र की वह अमिट छाप है। अन्तिम पश्चिम में दुःखान्तर्ही का नायक एक तरह से 'आइस्ट' का ही प्रतीक है। आगे चलकर इस क्षेत्र में नियति का कानून से बड़ा प्रभु की कृपा का सत्य वहाँ विकसित हुआ। शिवसपिण्ड पर त्रिदिचयन की दृष्टी विकसित माधधारणा से लेखक की सारी दृष्टि उग की शक्ति का सारा बल चरित्र पर है। भाग्य (फेट) पर उनका नहीं। भाग्य की सत्ता का वह स्वीकार नहीं कर सका पर उससे बड़ी शक्ति प्रभु की कृपा है। यह शिवसपिण्ड की दस दिशा में बहुत बड़ी देन है। ईश्वर यहाँ सव्यक्तमान है, पर गतान और प्रेत भी साथ ही साथ सत्य है। ईश्वर और धन इन, जीवन और मृत्यु यह विराट

सधय शक्सपियर की दुखान्ताकी की आत्मा है। 'मकबेथ' असाधारण चरित्र का नायक है। असाधारण गति सम्पन्न सनिक, विश्वासपान, राजा का परम प्रिय पात्र ईश्वर के अंग से परिपूर्ण। पर इसकी भेंट एक बार प्रेतिनी शक्ति, अधगाक्ति अर्थात् मृत्युपक्ष से होती है। क्योंकि इस अधशक्ति ने 'मकबेथ' की सहज वृत्ति को पहचान लिया कि यह अति महत्वाकींशी है। तभी वह अधगाक्ति को पकड़ म मरा गया। और उस अधगाक्ति से यदि एक बार भी उसकी पति आत्मा पराजित हुई तो वह सदा के लिये पराजित हुई। अब मकबेथ अपने ईश्वर अंग से रहित अकेला मैकबेथ है—अकला मनुष्य। दूसरा सत्य यह कि मकबेथ या 'हेमलेट' के भीतर कहीं न कहीं वह अधगाक्ति, वह प्रेतात्मा बड़ी थी, तभी तो उन्हे वह गतान लियाई पड़ा। 'मैकबेथ' के भीतर बैठा हुआ उसका शतान कितना निमग्न और अधगाक्ति वाला था। 'बैका' का 'मृत्यु दृश्य' कितना छोटा, अपराधपूर्ण और अमानवीय है। बेचारा बुढ़ा राजा और वह भी मकबेथ का अतिथि पूज्य भट्मान। आग डकन की ही हत्या से उसका जी नहीं भरता वह डबन के यन्त्रा तथा उसकी मित्रो को भी मारना चाहता है। सत्य है—यदि मनुष्य न एक बार भी सत्य को छोड़ा, ईश्वर को छोड़ा तो वह सत्य, वह ईश्वर उस मनुष्य का सदा छाड़ता चला जायगा।

पश्चिम में दुर्गातन्त्री की यह दृष्टि दगन के स्तर से चाहे जो रही हो, पर नाट्यकला और उसकी गति-सम्पन्नता की दृष्टि से अनन्य रही है। इस दृष्टि ने पश्चिम को यथायथा दिया—मधय लिया डामा का प्राण। तभी पश्चिम में 'मोडिफ़ेड रक्स' से लेकर 'हेमलेट' मकबेथ 'डाल्स हाउस', 'सीगल', 'मौनिंग', 'विन्स एलफ़ेड्रा', 'डेथ ऑफ सल्लमन' और 'वॉटिंग फार गादा' तक महान, मनुष्यपूर्ण नाट्यकृतिमा की एक अबाध परम्परा चली आ रही है। कहीं भी कोई 'पवचान' नहीं। क्योंकि दुर्गातन्त्री की दृष्टि में मधाय जीवन था। इसमें मूल में जीवन-सधय था। नाट्य धारा और जीवन धारा का सुंदर मेल—एकान्त भाव।

प्राचीन भारत में इसकी सामाजिकता उक्त विचार दगन के विरुद्ध रही। इसमें दो कारण रहे हैं। पहला तो दुर्गातन्त्री से जन-जीवन में ईश्वर के प्रति अथड़ा और ईश्वरीय माय और अनुगासन के प्रति अविश्वास, उपद्रा उत्पन्न होने का भय था। दूसरे सस्कृत नाट्यकारों ने आध्यात्मिक दृष्टि से मृत्यु की महत्ता बिलकुल ही सत्य कर दी—क्याकि उनका विचार से मृत्यु जीवन का अंत न कर आध्यात्मिक और ईश्वरीय जीवन के द्वार खोलती है। अतएव इस विचार-प्रधान न दुर्गान्तकी का मूलाधार ही सत्य हो जाता है।

सस्कृत नाट्य में अनन्य नाट्य अपने विकास चम और रूप में दुर्गान्तकी

के समीप पहुँच जात है किन्तु व कभी भी मृत्यु का आगर नहीं लत। 'मृच्छ कटिकम्' में यमनसेना की उपवन में मृत्युवत घटना दसवा पुँदर उल्लेख है। फिर ससृज्ज नाटक—जो सुगान्तरी के अनन्य उल्लेख है, उनमें दुःखी की के कतिपय तत्त्व नया व्यवहृत हात है। इसका बहुत ही सुन्दर उत्तर अरविन्द दिया है। उन्होंने कहा है कि जैसे वर्षा के लिये काल बादल की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार ससृज्ज नाटका में रस और आनन्द के लिये काल बादल सदा कभी कभी उन घटनाओं और कारणों की प्रतिष्ठा होती है। पर चूँकि यह सारा ब्रह्माण्ड यह सारा आशान ब्रह्मण्य है इसलिये उन बादल के भीतर भी वही रस वही आनन्द सम्पूर्ण आनन्द सुख और रस में घपना सह माग दत्त हैं। व दुःखी की अग सिर्फ उतन ही अग में व्यवहृत होते हैं। ताकि आनन्द के प्रकाश में तीव्रता आय—जैसे वर्षा के बादल का नया सूरज।

दुःखी के तत्त्व

अस्तु न जा दुःखान्तरी की परिभाषा की है वह तात्त्विक दृष्टि में अपने अग में सम्पूर्ण है। उसमें इसके सारे तत्त्वों की आर समुचित सक्त है। उसने दुःखान्तरी की परिभाषा देत हुए कहा कि—दुःखान्तरी किसी गभीर महत्वपूर्ण तथा विशाल काम का रगमच पर अनुकरण है जो भाषा के माध्यम से सौन्दर्य युक्त तथा आनन्दमयी बनकर भय और वरणा द्वारा हमारी मानवाय भावनाओं का प्रति परिभाषित करती है। सम्पूर्ण काम से तात्पर्य एत काम से है जिसका आदि, मध्य और अन्त पूरण से मुगठित रह और विशाल काम से तात्पर्य एत बात से है जो न बहुत बड़ा हो न बहुत छोटा।

अस्तु की उक्त परिभाषा में निश्चय ही दुःखान्तरी के सारे तत्त्वों का संकेत है। फिर अस्तु न दुःखान्तरी के छ विभिन्न तत्त्व विनाये हैं

- कहानी
- पात्र
- भाषा
- विचार
- दृश्यत्व
- संगीत।

कहानी में अस्तु का तात्पर्य उग भिन्न अथवा गायक से है जिस द्वारा भवभाविति जानने हैं। और वस्तु से उसका तात्पर्य उस तत्त्व से है जो केवल

नाटककार की चेतना में विद्यमान रहता है। अरस्तू के अनुसार यही वस्तु दुस्मान्तकी की आत्मा है। अरस्तू ने और उसके आगे के विचारका न इन तत्त्वा पर बड़ी गहराई में विचार किया है। ठीक जैसा हमारा यहाँ 'नाट्य शास्त्र' में 'नाट्य' के एक-एक तत्त्व का विचार एवं गहन विश्लेषण। कारण यह कि इन विचारका की दृष्टि ने अन्ततोगत्वा दुस्मातकी के एकान्त प्रभाव पर अपने अत्यन्त मौलिक और बिद्वत्तापूर्ण विचार प्रकट किये हैं। 'पोएटिक्स' में अरस्तू ने मुख्य रूप से यह बताया है कि दुस्मातकी का समुचित प्रभाव दशक पर तभी पड़ता है जबकि

○ दोनों प्रतिद्वन्द्वी पक्ष, मित्र, रिश्तेदार अथवा एक-दूसरे के हितचिन्तक हों, पर परस्पर शत्रु हों।

○ दाता पक्षा का सम्बन्ध स्पष्ट प्रकट न होकर प्रायः गुप्त और रहस्यमय हो।

इसके प्रकाश में सिद्धान्त दुस्मातकी की वस्तु के दो स्पष्ट विभाग हो जाते हैं। पहला वस्तु की आपत्त काल तक प्राप्ति और दूसरा उसकी जटिलता का समाधान।

मानव हृदय पर दुस्मान्तकी के प्रभाव का आधार अरस्तू ने चिकित्सा शास्त्र का सिद्धान्त माना है। जैसे वक्षः में रक्त की श्रृंखला से शरीर में किसी बड़े हुए प्रति तत्त्व का गमन करके रोगी को राग मुक्त किया जाता है उसी प्रकार दुस्मान्तकी के प्रभाव में भी यही सत्य है। इस सत्य को अरस्तू ने 'न्यायसिद्धि' अथवा 'रेक्ता' ही कहा है। यह आत्मगुद्धि नाटककार दशक में कल्याण का संचार करके करता है। 'गामद' तभी दुस्मातकी का मूलधार हो है नायक का पतन। और वह नायक कोई खलनायक नहीं बल्कि श्रेष्ठ नायक जिसमें सिद्धान्त निम्नलिखित गुण निश्चय ही हैं

○ श्रेष्ठता

○ भाषा प्रयोग की स्वाभाविकता

○ मानवता

○ समरूपता आदि।

ऐस नायक का पतन निश्चय ही दर्शक का कल्याण में भर देगा। क्योंकि दुस्मान्तकी के नायक में जब वह प्रत्यक्ष देखता है कि नायक तो सबका श्रेष्ठ, चरित्रवान, नैतिक, निष्पक्ष तथा विचारशील है फिर भी उसका पतन हुआ—यह सत्य साधारण नहीं है दर्शक के लिये। पर प्रश्न उठता है कि तब ऐस नायक का पतन आखिर होता ही क्या है। वस्तुतः दुस्मान्तकी का सबगुण सम्पन्न नायक निश्चय ही कहीं न कहीं किसी एक मूलभूत दोष का शिकार होता है। उसका यह एकांगी दोष ही उसका अग्र्य समस्त गुणों तथा विशेषताओं

के बावजूद उसे पतन देता है। यह दोष उसके विचारों में हो सकता है मन में अथवा शरीर में हो सकता है, बल्कि उसकी चित्त वृत्ति में हो सकता है, पर यह उसके लिये भयानक सिद्ध होता है। इसमें सिर्फ उसी का पतन नहीं होता, बल्कि उसका सारा परिवार, हिन्दू मित्र सभी इस दोष-ज्वाला में स्वाहा हो जाते हैं। दुस्मानकी के अन्त में स्वभावतः दण्ड पर तभी दो प्रभाव पड़ते हैं

○ करुणा का

○ भय का

दुस्मानकी में एक प्रभाव ना के पीछे रोमीय नाटककारों का उद्देश्य क्या था? वस्तुतः दुस्मानकी की रचना और प्रस्तुतिकरण का मूलधार धार्मिक पूजा थी। यह धार्मिक पूजा 'डायोनिमियस' और 'एपोलो' के त्योहारों से बंधी हुई थी। 'डायोनिमियस' के त्योहारों में लालसा, उन्मत्तता, आवेग और प्रगल्भता का अति में जीवन में अनाचार और विमृशलता आने का भय था। इसके विपरीत एपोलो के त्योहारों में मर्यादा, आत्मशास्त्रिता तथा आध्यात्मिकता की अति से जीवन में तीरमत्ता और ऊन आन का डर था। फलतः इन दोनों शिक्षाओं की अति का परिभाजा तथा संशोधन यूनान देग व प्रत्यक्ष लेखक का उद्देश्य था—विशेषकर यूनानी दुस्मानकी-लेखकों का। उनकी दुस्मानकी-कला और उमरे ममूरे चरित्र चित्रण व पीछे तथा अन्त में छिपी नम्रता का यही चरम लक्ष्य था। जब दण्ड शब्द आत्मश नायक का पतन देग चुकन है और भाग्य चक्र की गति का अनुभव कर लेता है तो उह जीवन के प्रति एक तटस्थ दृष्टिकोण प्राप्त हो जाता है। तब वह नास्तिक बनकर ईश्वरीय विधान के प्रति अपनी अग्रदत्ता दिव्यता हैं न के जीवन के रागरग में इतना हूँ ही जाते हैं कि वे सब कुछ भूल जाए। भाग्य की गति उह स्मरण रहे और यह भी याद रहे कि नायक के पीछे स्वयं नायक की चरित्रगत निरलता ही कारण रही है। एक ओर भाग्य का चक्र दूसरी ओर नायक के चरित्र का एकाकी दोष—यह है नायक व पतन का कारण और इसी विचार दृष्टि में दुस्मानकी की शक्ति और उसकी रहस्यमयी लोकप्रियता छिपी है।

दुस्मानकी का स्वरूप और प्रवृत्ति

दुस्मानकी अति गंभीरता का नाट्य रूप है। इसका विषय मनुष्य की गहरा समस्या और सार्वभौमिक मूल्य हैं। मनुष्य की नियति, उसका लक्ष्य, पुण्य-पाप, श्रेय अपराध तथा इंसान की व निमेष और बटु गथाप परिस्थितियों, जिनसे

मनुष्य को मंत्रस्त किया है—ताड़ा और मथा है ।

दुष्कान्तकी का भावक्षेत्र यद्यपि उत्पीड़न, दुःख और मृत्यु है, फिर भी अपने लक्ष्य में यह सज्जमात्मक है, साधक है । मृत्यु का मूल्य नहीं है, वह तो अवश्य-म्भावी है, महत्त्वपूर्ण है मृत्यु के पूर्व तब मनुष्य को सषप । तभी दुष्कान्तकी को ईमानदार कहा गया है। दुष्कान्तकी का नाट्यकारजीवनका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करता है । उसमें इतनी ईमानदारी और साहस होता है कि वह जीवन की सारी पराजय, हताशा और कष्टों को भोगता है ।

जो मनुई ने 'एटीगान' में नय कोरस के स्वर में दुष्कान्तकी की सहज प्रवृत्ति को रचा दिया है ।

Tragedy is clean, it is firm, it is flawless It has nothing to do with melodrama—with wicked villains persecuted maidens avengers gleam of hope and eleventh hour repentance

दुष्कान्तकी का नायक अस्तु के मूल्यांकन का प्रिय विषय रहा है । इसकी कल्पना करता है पूर्व उसने तीन प्रकार के नायकों की अवधारणा की उपेक्षा की है कि अच्छा आत्मी इस रूप में दिखाया जाय कि वह सुख से दुःख में गुजर रहा है—कि बुरा आत्मी दुःख और उत्पीड़न से मुक्त हो जा रहा है—कि एक बहुत ही बुरा आदमी सुख में दुःख में गिर रहा है ।

बस्तुतः इन तीनों स्थितिमा में दया, भय और कष्टों की वह निष्पत्ति सम्भव नहीं है, जो दुष्कान्तकी के लिए अवस्था अपेक्षित है ।

दुष्कान्तकी का नायक अच्छा व्यक्ति होता है किन्तु वह कुछ आधारभूत श्रुतियों और सीमाओं के बीच में रहता है । उसका भूत दाप उसकी निष्ठा दृष्टि में रहता है अथवा वह निर्लोप रहता है । अतः जब उसपर भयानक विपत्ति पड़ती है और वह उत्पीड़न का पात्र बनता है तब हम उसका प्रति दया उभरता है । जूलियस सीजर एटीगान एलबर्टा आडिपम, मायेनो और किंग रिचर ऐस ही नायक हैं ।

दुष्कान्तकी यात्रा निम्नान के लिए नहीं जाती । बल्कि इसमें विपरीत यह इस सत्य का दिशाती है कि जीवन जितने अभाषा से भरा पड़ा है ।

दुष्कान्तकी का नायक हम अथ में बहुत उत्प्रेक्षणीय है कि वह कम का प्रतीक होता है । उसमें विचित्रता के मूलभूत तत्त्व होते हैं । वह भाग्य से, नियति में भार सभाष से सषप लेता है । अतः तब जूझना है और उत्पीड़ित होता है तथा वह अपने अथक युद्ध से यह मित्र करता है कि मनुष्य महान है अथवा है गरिमामय है ।

दुखान्तकी जीवनगत मूल्या की परीक्षा करती है, और मेलोड्रामा 'काय का मूलाधार बनाकर चलता है। दुखान्तकी अन्धे-धुरे सत असत के बीच जीवन की सच्चाई को पकड़ती है। मेलोड्रामा उसके प्रति महज भावुकता प्रकट करता है और इस तरह जीवन से दूर भागता है। दुखान्तकी जीवन के, मनुष्य के सनानन आन्तरिक—आध्यात्मिक प्रश्नों को देखती है और मेलोड्रामा क्षणिक, स्थूल तथा प्रत्यक्ष व प्रति भाव्य करता है। दुखान्तकी भय और दमा की निष्पत्ति करती है मलाड्रामा की गहल आँसू, पवराहट और नफरत पदा करता है। फिर भी प्रभाव-मम्पनता की दृष्टि से मलाड्रामा कभी दुखान्तकी से भी थोड़ा सिद्ध होता है। किन्तु यह सत्य है कि ड्रामा कय दोन प्रकार एक दूसरे में सवथा भिन्न है। दाना में चरित्रगत अन्तर है।

गत दो सौ वर्षों में अनक नाटककारों ने मुग्यन मध्यवर्ग के दगाके के लिए गम्भीर नाटक लिखे हैं, इस तरह उच्चवर्ग के स्थान पर मध्यवर्ग ने रगमच पर अपना अधिकार और सरक्षण प्राप्त किया है। इस नय दक्ष-वर्ग ने स्वभावतः वही पसन्द किया है जो न दुखान्तकी हो न साहित्यिक नाटक। किन्तु वर्ग की परिदृष्टि हेतु इस नय नाटक में अनिकाय और भावुकता के तत्त्व अधिक प्राय हैं। इस ही प्राय मिश्रान्तकी भी कहा गया है।

'मेलोड्रामा' नाम में दो ग्रीक शब्द हैं जिनके अर्थ हैं संगीत और ड्रामा। कभी यह नाम 'ओपेरा' के लिए समानार्थी था। मेलोड्रामा का संगीत से पहला सम्बन्ध इटली और फ्रांस में हुआ। जर्मनी में मेलोड्रामा का आगम उस काल में लिया गया जो आर्क्स्ट्रा की संगत से बोना जाय। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में मेलोड्रामा पेटामाइस, संगीत और कथोपकथन के योग से रचित प्रस्तान को कहते थे। कभी-कभी फ्रांस और इटैलियन मुखांतकी नाटककारों ने इस नाट्य रूप को विकास देने में सम्भवतः काफी योग दिया है।

वस्तुन मेलोड्रामा के तत्त्व प्राचीन नाटका में ही यत्र-तत्र पर्याप्त रूप में मिलते हैं। दरापडीज सीनका, इसका बहुत ही नजदीक है। एलिजाबेथन नाटका में जो रस-दुखान्तकी थे वे सब मलाड्रामा ही के एक रूप थे।

उनासवी शताब्दी के उपरान्त मलाड्रामा का कुछ यथायथानी और तत्त्वगत रूप लिया गया। इसका एक मुख्य कारण था, यथायथानी का विशेषकर प्रस्तान गित्य में अभूतपूर्व विकास। मच-सज्जा प्रकाश और ध्वनि प्रभाव आदि से इस नाट्य रूप को पहले की अपेक्षा कहीं ज्यादा विस्फूर्त रूप मिला।

मलाड्रामा की ही चरम परिणति फिल्म माध्यम है। पंचिम में उन्नीसवीं शताब्दी एक तरह से मलाड्रामा का उत्पन्न काल था। इसमें उपरान्त आधुनिक

रंगमंच में भी यह समीर मनोरंजक नाटक के नाम पर काफी लोकप्रिय हुआ। लेडीज इन रिटायरमेंट 'डड यड' और 'लिटिल फावर्स' आदि नाटक इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। इन आधुनिक नाटकों पर मल्लोड्रामा व तत्त्व काफी उल्लेखनीय हैं।



सुखान्तकी

सुखान्तकी के विषय के भावनाएँ तथा विचार नहीं हो सकते जिनके द्वारा हमको दुःख अथवा पीड़ा का अनुभव हो। इसके साथ ही इस नाट्य प्रकार में उन परिस्थितियाँ तथा बायों की सम्भावना नहीं की जा सकती जिनके फल-स्वरूप उनमें हत्या, हिंसा और धाम की गुंजायूँ हो।

जिन प्रकार दुःखान्तकी का महत्वपूर्ण स्वभाव रोमीय दुःखान्तकी है, ठीक उसी प्रकार रोमीय सुखान्तकी का भी सत्य है। निश्चय ही रोमीय सुखान्तकी राम के समग्र जीवन और उसके पूरे परिवर्ण का दर्पण है। राम के निवासियों का विश्वास उनके जीवन का रागरण और उनके मासृतिक तत्त्व इन सब का प्रतिनिध रोमीय सुखान्तकी में प्राप्त होना है। इस तरह से नाट्य का यह रूप दुःखान्तकी की अपेक्षा कहीं अधिक जीवन का परिचयाक और उसका प्रतिनिधि स्वरूप है।

इसका उद्देश्य आचरण सम्बन्धी शिक्षा तथा सम्कार-दान के हेतु भी माना जाता है, जिसमें निःसंशय समाज और राष्ट्र के श्रेष्ठ नागरिक उन सबें ताकि वे अपने पर और अपने से बाहर दूसरे लोगों पर अपनी शक्ति में शासन कर सकें। इसके लिये रोमीय सुखान्तकी-लेखक के सामने धार्मिक अथवा प्राध्यात्मिक विषय नहीं आये थे। वे ऐसी सुखान्तकी को चुनते थे जो समाज के लिये अस्पष्ट व्यावहारिक और सामप्रद हो। बकाइन्स नामक सुखान्तकी में नायकवारा के लिये कुछ नाट्य विषय और नियम बनाये गये हैं जिनमें पहला है—'धुवाँला की मृत्तिका और उमस भाव का अत्यधिक निराकरण न करो' के कुछ दिना बाद अपने भाव ठीक हो जायेंगी। दूसरा है

अपराधी का अधिक निन्दित न करो, उस छोटा-बड़न सीवा शेषपूर्ण जीवन में सीखने का अवसर दो।

इन विषय-सूत्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि रोमीय सुखान्तकी का स्वर अत्यन्त सामाजिक और व्यावहारिक होता है। इसमें मुख्यतः वेन्यायें, दरबारी लोग, मुफ्तसोर, भानसी पाखंडी धमंडी, दोगी, शेखी बाने और अपनी ही बात छोड़ने बात परिवर्णों की प्रतिष्ठा होती है। यह दृष्टान्त रोमीय सुखान्तकी से है।

रोमीय सुखातकी शैली

शिल्प और शैली के अतृप्त पहला प्रम था कथावस्तु का चुनाव । इसमें मुख्यतः पञ्चत्रयपूर्ण हस्यास्पद घटनाओं का ही विधान होता था । ऐसी घटनाएँ तथा पात्रों के बीच युवा और युवतियों को डानकर वे उनकी बुद्धि उनके वाय कौशल तथा उनके चरित्र का अन्वेषण और परिष्कार किया करते थे ।

इस कथावस्तु के आधार से सुखान्तकी में वामुकता ही प्रधान रहा करती थी । स्त्री पुरुष के संबंध में किसी भी पवित्रता का अंग तक नहीं मिलता था । इस विषय तथा भावना के अन्तस्वरूप इस सुखातकी का वातावरण भी अमन्य और दुःशील रहता था ।

रोमीय सुखातकी लेखक अपने राष्ट्रीय सिद्धान्त और सामाजिक आचरण के पालन में प्रायः वृद्ध और अनुभवी पुरुष पात्रों का ही शायित्य देते हैं ।

टरेस और प्लाटस रोम के प्रसिद्ध सुखातकी लेखक हुए हैं ।

जेक्सपियर की सुखातकी शैली

इस क्षेत्र के रोमीय नाटकों की शैली का नक्का भी प्रभाव इंग्लिस्तान के सुखातकी लेखकों ने स्वीकार नहीं किया । इसका कारण मीडयवाय के अति रिक्त बुद्ध और भी था जिससे कि अंग्रेजी की सुखान्तकी की आत्मा रोमाय से सबका प्रनिष्कृत सिद्ध हुई ।

जबकि माय मध्ययुग के आगमन ने साहित्य की इनमें अपार विषय त्थि कि रोमीय मीमित शकीण विषय बहुत पीछे छूट गया । तब तक अंग्रेजी-लेखकों का इनका मानसिक विस्तार भी हुआ कि वे अपने विषय दृष्टिकोण में सुखातकी के माय बहुत आगे निकल गये । और उन्होंने अपनी सुखातकी की धारणा अपने मौलिक ढंग से विवर्धित की । जेक्सपियर का नाम इस प्रसंग में बहुत ही महत्वपूर्ण है ।

जेक्सपियर के सामने मध्ययुग ने अपनी अपार विषय-सम्पत्ति प्रस्तुत की । समाज में निम्ननिम्नित तत्त्वों की मुख्यता मिली

(घ) राज्य भक्ति

(भा) स्वामि भक्ति

(द) प्रेम

(ई) बलिदान

एनिहावय के स्वणयुग न एक तरह स सौदय-बोध को ही परिवर्तित कर दिया, पनम्बरूप देने माहिय के प्रतिमान म एक आमूल परिवर्तन ला सडा किया जिसम शेक्सपियर की मुखान्तकी अपने विषय और गिला दोना म अपूर्व सिद्ध हुई । चुने हुए कथावस्तु व अलम्बन म आनन्द, सुख और सन्तोष की लहर बह गयी । इसम पहली बार हृय और सन्तोष का प्रकाश फूटा । इस उद्यान म कल्याण-जन्म तथा यथाय जीवन व सडा का अन्तुन सम्बन्ध दीप्त पडा । शेक्सपियर की यथाय दृष्टि ने इस क्षेत्र म जहाँ जीवन की विपत्ति उसकी कटुता तथा उसकी अन्धक्यता का चित्र दिया बहा उसकी कल्पना शक्ति न उसकी कला के माध्यम म उम जगत् की भाकी प्रस्तुत की जहा प्रेम, धडा और उत्तम आचरण का समार था ।

शेक्सपियर की मुखान्तकी की प्रकृति

शेक्सपियर की सभी मुखान्तकिया रोमांचक हैं । उमन गमना की मुखान्तकी पद्धति का ही उलट दिया । शेक्सपियर के कथानक रामना की तरह पडयान पूरा, घटना प्रधान न हाकर पात्र प्रधान हुए । स्वाभाविक आचार विचार और दन्तिन जीवन व भीतर म उमन जीवन का यथ्य चित्र उपहास लड और हास्य हंम गिा । शेक्सपियर व पात्र रामीय उमका की तरह कठुनलो न हाकर अपने अन्तिव और सबन व्यक्तित्व व साथ उसकी मुखान्तकी म प्रतिष्ठित हुए । य पात्र अपनी समूची लटि और प्रवृत्ति म भावादेक भाग सहानुभूति के प्रतीक निद्ध हुए जिनका युग व सापक्ष्य म अपना सुन्दर जगन दीप्त पडा, 'विगत तथा गालीन मानव हृदय जो इस पाक्षिक जगन की जहता स दूर उसकी दु गीतता मे परे, एक लबी गुला स पूछ, मानवता स निक्त ।'

एक और रामीय मुखान्तकी का दु गीत, हिंसक तानुप अधामुखी जट-जीवन दूसरी भार शेक्सपियर की मुखान्तकी माध्यात्मिक, स्तहसित मानवता पूरा रसमय जीवन ।

नाता म जमीन घासमान का अन्तर । दाना म जीवन-न्तर और मानव मूल्य का भलग भलग रूप । एक जैसे वनर अधधुत का प्रतीक और दूसरा स्वणयुग का विहान ।

शेक्सपियर न अपनी मुखान्तकिया म जा कथावस्तु चुनो हैं उनका मूलधार प्राय इटला और फाल की प्राचान तथा एनिहामिक मायार हैं । इन प्राचीन मायाप्र म मध्ययुग व सांस्कृतिक जीवन का चित्रपट मिलता है । मायाजिन

और पारिवारिक जीवन की भावनी देयन का मिलती है।

‘वलेनटाइन की घोरता, दृढ़ता, सहानुभूति तथा मन्त्री और प्रोटियस के प्रति जूलिया का अनन्य प्रेम तथा उसकी विजय।

(द्वि जेटिस्मैन आफ वेरोना)

आइजाबेल का अप्रतिम सौन्दर्य, तथा अपनी ननिक शालीनता और मेरि याना का घट्ट प्रेम।

(मेजर फार मेजर)

हीरा की निष्कपटता तथा उसका स्नेह, कियेटिम की हार्मप्रियता और निष्ठा।

(मच एंड एवाउट नॉथिंग)

प्रास की राजकुमारी का अनुपम सौन्दर्य तथा राज्य पदाधिकारियों का अस्वाभाविक हठ तत्पश्चात् प्रेम की अपूर्व विजय।

(सब्ज नयर लास्ट)

पाणिनीया का शारीरिक तथा मानसिक सौन्दर्य, और रित भक्ति ए टानियो तथा वसानियो की सफल मन्त्रा तथा प्रेम की विजय।

(द मर्चेन्ट ऑफ वनिस)

राजलिंड का अनुपम सौन्दर्य सहनशीलता तथा प्रमनित्वा, मीलिया की वतन-परायणता, आरलण्ड की घोरता तथा धर्म, एडम की अपूर्व स्वामिभक्ति।

(ऐज यू लाइव इट)

यायला का अविरल स्नेह तथा स्वामिभक्ति ओतीवीया की भ्रान्ति भक्ति तथा प्रेम, सर टोरो वल्च तथा एण्ड्रू एग्यूचीव की रणरलिया।

(टवल्फथ नाइट)

हलना की पति भक्ति, उसकी निष्ठा तथा उसकी विजय।

(भाल इज वेल् दट एण्डम वेल्)

इस तरह शकसपियर की सभी सुखा-तन्त्रियों में प्रेमोपासना ही मूलधार है जिन्हें ऊपर वह अपने स्वयं युग की मस्तिष्क और प्रेम की अनुभूति का महल सजा करता है।

सुखान्तकी के प्रकार

सुखान्तकी वह जितने स्तर और प्रकार होते हैं, उन्ने नाटक के अन्य रूपों में नहीं। लेकिन हमने प्रकारों को प्रसंग-अलग बाँटकर देना इसलिये कि

है कि नाटककारा न मुक्त हावर प्राय मुद्यान्तकी के विविध तत्त्वा को अपन नाटको म खुलकर इस्तमाल किया है। उदाहरण के लिय 'प्रिस्टोफेस' न अपनी मुद्यान्तकी म अन्तर्लता क सारे रूपा के साथ-साथ गारीरिख प्रसंगति के मज्जाक का मिलाया है—जबकि गारीरिख प्रसंगति का मत्य वस्तुन फास' का क्षेत्र है। तमक भी अलावा उसन अपनी मुद्यान्तकी म राजनीतिक और दायनिक लहरें भी उठाये हैं। इसी लिए इसकी मुद्यान्तकी का एक प्रयोग प्रकार ही मान लिया गया है—आरिस्टोफेनिक कामडी।

इसी तरह शेक्सपियर की मुद्यान्तकी का विभेद करना कठिन है। क्योंकि उसका साग लखन इतना विविध और मिश्रित है कि उस प्रकारा म बाँटना कठिन है। फाम, रीमाटिक और 'डाक' मुद्यान्तकी—नया न मय तत्त्वा का एक ही म मिता दना—यह उसकी चरम विप्रेक्षा था।

प्राफेसर एलन थामसन^१ न मुद्यान्तकी का (उसके मूल विधान का ध्यान म रखकर) कम तरह रखा है

- | | | |
|-------|---|--------------------------|
| फॉर्म | १ | उच्च मुद्यान्तकी |
| | २ | विचार भाव की मुद्यान्तकी |
| | ३ | चरित्र का उत्पत्तिपन |
| | ४ | उक्ति वचिष्य या हास्य |
| | ५ | कथा विधान |
| | ६ | गारीरिख दुषटना या विमगति |
| | ७ | अन्तर्लता |

इसी प्रकार 'निक्कल' २ न मुद्यान्तकी का पाँच प्रकारा म दना है

- | | |
|---|--------------------------------------|
| १ | फॉर्म |
| २ | हास्यमय |
| ३ | गरीमाटिक (शेक्सपियर) |
| ४ | अभिर्भाव मय (इटाग) |
| ५ | आचरणवन मुद्यान्तकी (कामडी या प्रमनम) |

मुद्यान्तकी की स्थितिया स उसके हास्य स दगाव का कस सुग मिलना है—यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। हमी का मानद वही उठाया जा सकता है, जहाँ बहुत ही गम्भीरता और वग म भावनाओं का उद्रेक नहीं होता। एसी

1 Alan Reynolds Thompson The Antomy of Drama (Bevrecley University of California press 1942)

2 Nical The theory of Drama (New York Thomas Y crowall Co 1931)

भावना हँसी को सदब मारने वाली होती है। फिर हँसी और भावना व सतुलन और अनुपात का प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है।

नेवसपियर की रोमांटिक सुमान्तकी, शरिडन और गाल्डस्मिथ की भावु वतामय सुप्तातकी तथा वर्तमान काल की ऐसी अनेक रचनाओं में दशक की भावनाएँ चरित्र के साथ जुड़ती हैं। चरित्र के साथ दशक की पूरी समबदना मिल जानी है। किन्तु इस तरह की सभी श्रेष्ठ-सफल सुप्तातकियाँ म वस्तुतः इसी भावना और हमी का कलात्मक अनुपात और सतुलन सबत्र मिलता है।

दूसरी ओर वगसा के विचार हैं कि हँसी का सरस वग शत्रु भावना है, क्योंकि भावना सदब बुद्धि को प्रभावित करती है, और जहाँ बुद्धि प्रभावित है वहाँ हमी का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी लिए हास्य के हेतु तटस्थ वस्तु परकता आवश्यक है।

सुप्तातकी का प्रदर्शन

सब नाट्य प्रकार की अपेक्षा सुमान्तकी का अभिनय रंग प्रदर्शन का मध्य है। क्योंकि इसकी सम्पूर्णता किसी भी तरह खलन में या पाङ्गुलिपि में नहीं रहती वरन् यह अपना सम्पूर्ण रूप रंग प्रयोग में पाती है। अभिनय की गति, उसकी वाक्चातुरी, उसका वस्त्र विन्यास समूहन और मंच-यापार परिस्थिति का निर्माण और उसमें हास्य मृष्टि, ये सब सुप्तातकी के प्रदर्शन में महत्वपूर्ण हैं।

हँसी सामाजिक वृत्ति है। यह छून की बीमारी की तरह है। किन्तु गत यह है कि सामाजिक जरा हल्के मूढ़ में है। जब सहज प्रतिक्रिया दशक और अभिनय व बीच चलती रह।

प्रदर्शन दृष्टि में सुप्तातकी रंग-वाय का एक ढाँचा है जिसमें जीवन पूवना है भरता है प्रदर्शक, अभिनय और रंग गिल्पी। किन्तु यह सारा प्रयोग गिल्पी बकार है यदि सुप्तातकी में सुप्तातकी की वास्तविकता—नाट्य स्थिति न है आत्मा न है।

प्रदर्शन

जब मलाट्टाया (अतिनायक) सुप्तातकी का एक स्वरूप है, ठीक उसी प्रकार

प्रहसन मुखान्तकी का । एक तरह से अति मुखान्तकी ही प्रहसन है । या ड्रामा के स्वरूपों में प्रहसन बहुत ही प्राचीन रूप है, जिसका प्रभाव भी बहुत व्यापक है । प्रहसन का मूल उद्देश्य मनोरंजन है—वह भी हल्के स्तर से । इसका दणक पर प्रभाव अवाध और अनियंत्रित रूप में पड़ता है । इसमें बौद्धिक और प्रतीकात्मक अर्थ और अभिप्राय बहुत ही कम होता है ।

प्रहसन विगुद्ध सामाजिक हाना है इसमें व्यक्ति नहीं आता, बल्कि समाज के पक्ष आते हैं, उसकी विपमताएँ आती हैं । तभी प्रहसन इतना लोकप्रिय होता है, क्योंकि इसके हास्य का विषय व्यक्ति उतना नहीं होता, जितना कि उसका प्रतिनिधि होता है । प्रहसन की लोकप्रियता का एक दूसरा कारण यह भी है कि हम जीवन की विपमताओं, उसके संघर्षों तथा उसके दिन प्रतिदिन के आदान प्रदान से छुटकारा पाते हैं । चाहे वह छुटकारा कुछ ही देर का क्या न हो । यह छुटकारा प्रहसन सबसे ज्यादा हम देता है । क्योंकि इसका साधन ही है अवाध हमी ।

प्रहसन के विषय हल्के फुल्के होते हैं । यह स्थिति व बाह्य कारण पर ही आधारित होता है । इससे विषय प्रायः होते हैं—होते रहते हैं

मानसिक भ्रष्टता, असंगति और अनतिक्रान्ति

भ्रममूलक आशयों और विचार

निरर्थक वार्तालाप अनगल संवाद

अशिष्टता, दुर्गति तथा वितण्डावाद

प्रपञ्च-पूर्ण काय तथा अस्वाभाविक जीवन

मूलतापूर्ण काय

पाण्डु तथा अस्वाभाविक काय

भारीरिक्त स्थूलता, विदूषक—भाजन प्रियता

प्रहसन मूलतः परिस्थिति-जन्य होते हैं । इनकी कथावस्तु में काय और कारण की इतनी तीव्रता और बग हाता है कि इसमें न अभिनता का कुछ माचने-समभन की जरूरत होती है न दर्शकों को । काय और हमी दाना में जैसे तूफानी सम्बन्ध रहता है ।

प्रहसन विगुद्ध प्रदशन का सत्य है । इसमें भी अभिनता की प्रतिभा, उसकी सहज मृदुल-शीलता ये दोनों तत्त्व महत्वपूर्ण हैं ।

चखव का दी भरेज प्रपाजल' दी एनीवरसरी, गाल्डस्मिथ का 'नी स्टूप्ड दू का-रर', मालियर का दी डाक्टर इन स्पाइट आफ हिमसेल्फ, शक्सपियर का 'दी मेरी वाइल्ड आफ विडमर ये सब महत्वपूर्ण प्रहसन हैं ।

पाश्चात्य रंगमंच
प्रस्तुतिकरण पक्ष

पाश्चात्य रगमच प्रस्तुतिकरण पक्ष

रगमच का कृतिरव पक्ष ड्रामा (नाटक) जिस तरह एक कला रचना है, ठीक उसी तरह रगमच का दूसरा पक्ष प्रस्तुतिकरण भी एक स्वायत्त कला है। कला के प्रति पाश्चात्य दृष्टिकोण है कि हर कला, प्रकृति का अनुकरण है। मनुष्य की प्रकृति की यथाय भाँवी और उसका प्रतिनिधित्व—यही मूलाधार है पश्चिम की कला-दृष्टि का। चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला साहित्य और रगमच, इस तरह मनुष्य की प्रकृति का न्यून है तथा उससे भावा विचारों की अभिव्यक्ति है। उस अभिव्यक्ति की रचना प्रक्रिया यह है कि रचनाकार कला का मूलस्मृतियाँ, चित्रा भावा की संरचना करता है। उन्हें फिर स जीता है—कला स्तर से स्मरण करके। स्मरण इसनिय कि कलाकार अपनी अनुभूति ही को तो फिर से रचना है। इस रचना में उसकी कल्पना, उसकी मृदुल प्रकृति जन्म मिली रहती है किन्तु यह रचना मूलतः जीवन प्रती ही तो है। इस तरह कला, मृदुलकर्ता द्वारा जीवन की व्याख्या है—और यह व्याख्या हमें हम से है कि वह मनुष्य के द्वारा समझी बुझी और जानी जा सके। इस मनुष्य-बुझन और जानन का भाव उद्देश्य यह है कि हमें अपने आन्तरिक और बाह्य में 'भाव' पता हो सके। 'मनुष्य' जसा महान चित्र 'ताजमहल' जसी महान इमारत हमें हमारे भीतर भाव ही तो पता करनी है। हमी तरह विचारों की 'विशेष सिम्पनी', 'धर्म' की नप्ता और आदर्शों के आन्तरिक भाव-आन्तरिक सिद्धि हैं। और ठीक इसी तरह 'आन्तरिक', 'हैमलट', 'सीगल' 'नामूर डब्लू' जस नाटक हमें हमारे भीतर महान भाव और विचार पदा करत हैं।

य महान भाव और विचार क्षणिक है। ऐसी बात नहीं, य हमें और आता में सत्ता के लिये धर्म हो सकत है। वास्तविक-मनुष्य कलाकृति की यही भूमिका है। यही स्तर है। कलाकृति में प्राप्त भाव और दृष्टि, मनुष्य में वह प्रकृति पता करती है कि वह जीवन और जगत् का जगत् वास्तविक प्रथम और प्रथम में देखना शुरू करता है। हर एक और थोड़ा सा मनुष्यनामक प्रक्रिया एक-दूसरे में धर्म और भिन्न हो सकनी है। यह सब उगा मनुष्य और मनुष्य-लोच पर निर्भर करता है।

रगमच की प्रस्तुतिकरण-कला में हमें और आता में वह महान भाव और

पाश्चात्य रगमच प्रस्तुतिकरण पक्ष

रगमच का कृतित्व पक्ष कामा (नाटक) जिस तरह एक कला रचना है ठीक उसी तरह रगमच का दूसरा पक्ष प्रस्तुतिकरण भी एक स्वायत्त कला है। कला के प्रति पाश्चात्य दृष्टिकोण है कि हर कला प्रकृति का अनुकरण है। मनुष्य की प्रकृति की यथाय भावी और उसका प्रतिबिम्बन—यही मूलाधार है पश्चिम की कला-दृष्टि का। चित्रकला भूतकला वास्तुकला साहित्य और रगमच इस तरह मनुष्य की प्रकृति का दर्पण है तथा उसका भावा विचारों की अभिव्यक्ति है। उस अभिव्यक्ति की रचना प्रक्रिया यह है कि रचनाकार कलाकार पूर्वस्पृष्टियाँ चित्रा भावा की संरचना करता है। उन्हें फिर स जीता है—कला स्तर से स्मरण करके। स्मरण हमसिये कि कलाकार अपनी अनुभूति का जो ता फिर से रचना है। उस रचना में उसकी कल्पना उसकी सृजन वृत्ति जलर मिनी रहती है किन्तु यह रचना मूलतः जीवन प्रती ही तो हुई। इस तरह कला सृजनकर्ता द्वारा जीवन की व्याख्या है—और यह व्याख्या हम कहेंगे कि यह मनुष्य द्वारा समझी धूमी और जानी जा सक। हम समझन धूमन और जानन का भी उद्देश्य यह है कि दंगल थाता और पाठक में भाव पैदा हो सक। मडोना जसा महान चित्र ताजमहल जैसी महान इमारत दंगल के भीतर भाव ही ता पैदा करती है। इसी तरह त्रिपावन की 'फिफथ सिम्पनी' दंगल की कलाओं और ग्राफिक्स थाता के निय भाव-श्रोत मिट्ट होते हैं। और ठीक इसी तरह ग्राफिक्स हैमनट सीगन, 'नोपर डप्प' जस नाटक दंगल के भीतर गहन भाव और विचार पैदा करते हैं।

य गहन भाव और विचार क्षणिक हा ऐसी बात नहीं य दंगल और थाता में सदा के निय अमर हो सकते हैं। वास्तविक-अपूर्ण कलाकृति की यही भूमिका है। यही स्तर है। कलाकृति से प्राप्त भाव और दृष्टि, मनुष्य में वह प्रत्यक्ष पदा करती है कि वह जीवन और जगत् का उसका वास्तविक अर्थ और प्रसंग में लगना शुरू करता है। हर रंगक और श्रोता का यह भावनात्मक प्रतिक्रिया एक-दूसरे से अलग और भिन्न हो सकती है। यह सब उसका सत्कार और गौण-बाध पर निर्भर करता है।

रगमच की प्रस्तुतिकरण-कला में दंगल और श्रोता में यह बड़ा भाव और

विचार उदभूत करना, इस सत्य का मूलाधार है कि नाटक में व्याप्त भाव और विचार का प्रस्तुतिकरण कला के माध्यम से सम्प्रेषित करना ।

इस सम्प्रेषण के लिये, कल्कि इस रचना के लिये कलाकार पहले मूल विषय वस्तु के प्रति अपनी अवधारणा निश्चित करता है । फिर उस अवधारणा का कला माध्यम से 'यक्त करने के लिये वह उसकी निरूपविधि का सहारा लेता है । इस तरह कला रचना निम्नलिखित तत्वा से सम्पूर्ण होती है

अवधारणा

निरूपविधि

अरिति

संगत

आग्रह

अनुपात

गहनता

भाषादत्ता

लक्ष्य

भाव और शिल्प का सम्बन्ध

पश्चिम के रगमच में, प्रस्तुतिकरण पक्ष से इन तत्वा के समन्वित बिन्दु पर जो महत् कला खड़ी होती है, उसने 'यत्कित्वधारी का नाम है—निर्देशक अथवा प्रस्तुतकर्ता ।

निर्देशक

पश्चिम के रगमच इतिहास और उसकी परम्परा में निर्देशक के व्यक्तित्व को बड़ा ही निश्चित और उल्लेखनीय स्थान प्राप्त है । उस पश्चिम के रगमच में रचनाकार और व्याख्याकार दोनों का पद एक साथ मिला है ।

और ये दोनों पद एक साथ अन्य किसी भी कलाकार को नहीं मिल सके । क्योंकि कलाकार या तो केवल गृजनकर्ता होता है—जग कम्पोजर, मूत्रिकार, चित्रकार और लेखक । या तो वह केवल व्याख्याकार 'निवेद्यक जग गायक' बान्ध, अभिनेता रंगिली धारि—जो मूलतः अपनी स्वतन्त्र गृजन रचना से रचना न कर, एक रचित कलाकृति की पुनरचना करत हैं—उस निरग्न प्रकट करत हैं ।

निर्देशक के इस मूल्यवान् व्यक्तित्व का अन्य आधुनिक रगमच की

देन है। प्राचीन समय में, अर्थात् ग्रीक रंगमंच में निर्देशक का आदि रूप था 'कारेगियस' जिम्मा काय था 'कोरम' को प्रशिक्षण देना। इस प्रणालि में 'कारेगियस' कोरम को गति-अचार समूहन, नृत्यवत् गतिया, मुद्रायें, आदि ही नहीं बताता था बल्कि वह उद् नाटक का मूल विचार, सघन भाव, भावबोध तथा विवचन भी बताता था, ताकि 'कोरम' के अभिनय से दृश्य व अनुसार हजारों दर्शक एक साथ भय, नास और आसुओं में भीग जायें। आज के निर्देशक व्यक्तित्व व प्रमग में यही 'कारेगियस' ही सम्भवतः उम युग का निर्देशक था।

सकटा वर्षों तक इसी नम रूप से प्रस्तुतिकरण चलता रहा। फ्रेंच कनामिकल स्कूल ने अपने नाटक में स्वगतनयन के विकास में परस्पर दो पात्रों व बीच (दो बेंचा पर) सम्ये कथोकथनों का ग्रहण किया। इसके प्रदशन के लिये उ हाने वाक प्रशिक्षण की प्रतिष्ठा की।

फिर 'गोथ' तथा अन्य कई नाटककारों ने रंगमंच में यथाथ की प्रतिष्ठा की और उसकी प्रति आग्रह किया विशेषकर प्रस्तुतिकरण क्षेत्र में। आग यथाथ को स्थान मिला। मंच पर दो 'बेंचा' की जगह एक और एक सोफा आया, तथा दूसरी ओर तीन कुर्मियों के साथ एक छोटी मज।

प्रस्तुतिकरण क्षेत्र में गाइन जेग का आगमन निर्देशन-कला के उद्य में एक अभूतपूर्व घटना है। जेग ने प्रस्तुतिकरण की कला का रूप दिया तथा उसने उसे एक सम्पूर्ण इनाइ के रूप में स्वीकार किया। नाट्य प्रदशन में, मंच विधान, रंग-नीलन वस्त्र और रूप विद्याम—इन सभी को उसने यथाथ बना के रूप में प्रतिष्ठित किया। और सभी में रंगमंच-कला एक स्वायत्त कला के रूप में स्वीकार कर ली गयी। यही में पश्चिम के रंगमंच में आधुनिक निर्देशन का उद्य जाना है।

रंगमंच व इतिहास में (आधुनिक युग से पूर्व) प्रशान की अनन समस्याओं की विभिन्न ढंग में हन किया गया है। जम मध्ययुगान रंगमंच में विगत मंच विधान तथा तथ्यपूर्ण रंग गित्य के लिय पूरा का पूरा एवं सगटन इसके दायित्व का वहन करता था। एलिजाबीथन रंगमंच में—सम्पूर्ण व्यावसायिक कम्पनिया में निर्देशन का यह काय अभिनता और नाटककार दोनों मिलकर सम्हालते थे। रंगमंच व 'प प्रवच काय, मनजर के हाथ में रहन थ। 'हैमनट' में हैमनट स्वय अपना अभिनताया का प्रदशन के निय प्रशिक्षण और निर्देशन देता है इस तथ्य व पीछे उस कान व ग्लार वियटर का यह उपाकरण काफी पर्याप्त है निर्देशन और नाटककार ही उम युग में निर्देशन का काय सम्भालते

ये। मोलियर (नाट्यकार) ने स्वयं सतरहवीं शताब्दी में अपनी मंडला के साथ बारह वर्षों तक नाट्य प्रदर्शन का सारा कार्य संचालित किया है। होनने के लिए अभिनेता एक विविध प्रकार का जानवर है भाषित्व की यह प्रसिद्ध उक्ति निर्देशक के ही व्यक्तित्व की ओर ज्वलंत संकेत है।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में डेविट गरिब और 'विलियम मजरेडी' जैसा महान अभिनेताओं ने नाट्य प्रदर्शन को एक संगठित रूप देने का प्रयत्न किया फिर भी आधुनिक युग से पूर्व जब तक कि निर्देशक के व्यक्तित्व का उदय नहीं हुआ नाट्य प्रदर्शन का कार्य परम्परा के ही सहारे चलाता था।

अभिनेता और अभिनय

रंगमंच का जीवन्त माध्यम और शक्ति अभिनेता है जो अपनी अभिनय कला में नाटक के आधार पर दर्शक समाज के बीच खड़ा है। अभिनेता की रचना और पात्रों रंगमंच को जीवन्त रूप देती है। अभिनय-कला कृति—जो रंगमंच की अनन्य शक्ति है इसका मूल यही अभिनेता है।

अभिनय-कला प्राग्जि है। इसकी परम्परा प्राचीन है और हर युग में (प्राधुनिक युग के पूर्व तक) अभिनेता अपने ही कान से बंधा है। पांचवीं शताब्दी ईसा पूर्व का ग्रीक अभिनेता जितनी विभिन्न भूमिकाओं का घटा करता था। उमर बढ़ने उसने मुखौट उसकी अभिनय-कला और रंगमंच से कितनी सादृश्यता में जुड़ा हुआ था। एलिजाबीथन रंगमंच में अभिनेता स्त्री पुरुष दोनों की भूमिकाएँ निभा करता था।

अभिनेता और उसकी अभिनय-कला में निम्नलिखित उल्लेखनीय उल्लेखनीय हैं

(क) अभिनेता रचना करता है।

(ख) अभिनेता व्याख्याकार भी है।

(ग) रंगमंच का यही वह जीवन्त माध्यम है जिसमें नाटक दर्शक को सम्प्रेषित होता है।

प्राचीन रंगमंच में, अभिनय कला के अन्तर्गत हमारे पाँच भग माने गये हैं

■ मुख मुद्रा

○ गति मुद्रा

पारवात्य रगमच प्रस्तुतिकरण पक्ष

○ गति

○ वेग

○ बाणी या वाक

अभिनय क रूपा तथा उमक फुल मूलभूत प्रकार पर पश्चिम म बहुत बल दिया गया है। अभिनय-कला को वहाँ मार्केस्ट्रा से कभी-कभी उपमा दी जाती है। अर्थात् अभिनय म लय, अनुपात तथा सगति पर बहुत आग्रह है। मंच पर प्रायः अनक अभिनता उपस्थित रहते हैं। उनम से कभी दा अभिनता काय रन होते हैं, कभी एक छार अप महज खड़े रहते हैं। ऐसी स्थिति म जा अभिनता मुख्य रूप से अभिनय करता है वह सत्रिय अभिनता होता है, किन्तु गोप अभिनता सत्रिय नहीं रहत। व यद्यपि मौन रहते हैं, फिर भी व अपनी गारीरि चष्टा मुख की भाव भगी तथा गति से अपनी अनुक्रिया (क्रेस्पॉन्डिंग ऐक्शन) अनय प्रकट करते हैं। यह अभिनय—समयनारमक, सहानुभूति पूर्ण, तथा अनुक्रियात्मक—इन तीन प्रकार का होता है।

इनी त्रिये अभिनय म सहयोग और प्रदर्शन म सामूहिक कला का विशेष महत्व है। इसी सन्ध म व्यक्तिगत, सामूहिक तथा सगठित अभिनय कला उत्कृष्णीय है।

सामूहिक अभिनय भी तीन प्रकार का मिलता है। एक समवेत (कोरम) जिसम अभिनताया का एक समूह एक साथ गाना-बजाना अभिनय करता है। दूसरा सामूहिक अभिनय जिसम एक दल के लोग एकत्र हावर विचार विमय, सम्मिलित काय तथा दल के रूप म कोई चष्टा करत हैं। तीसरा प्रकार—भीड़ भयवा जन-समूह का होता है जिसम सामूहिकता क तत्त्व के साथ ही प्रत्येक अभिनता का उमम अपन व्यक्तिगत अभिनय का भी योग दना पडता है।

गरीर

बाणी और

भाव प्रकणता

अभिनता क महत व्यक्तित्व म इस तीन प्रमाणना का बहुत ही उपाग महत्व दिया गया है।

मन सज्जा

अस्तू न हयता का रग और अन्तिम तत्त्व माना है। रग हयता का

बहुत बड़ा आधार प्रदर्शन में यही मंच-मञ्जा है। हर दशक 'नाटक देखने' जाता है—नाटक के लिये नहीं जाता। अतएव दृश्यत्व इसकी बहुत बड़ी विशेषता है—मूल है। ग्रीक, एलिजाबीथन और 'नोह' में जहाँ कि मंच स्थायी और अपनी सीमा मर्यादा में एक दृश्य ही होता था, वहाँ भी नाटक के प्रदर्शन में गति मुद्रा नृत्य, समूहन वस्त्र विन्यास और रूप विन्यास में दृश्यत्व पर कितना आग्रह रहता था।

आधुनिक युग के पूर्व तक मंच-सज्जा के सम्बन्ध में प्रायः दो उपलब्धियाँ सामने आती हैं

(१) चिनीय परम्परा (पिक्टोरियल ड्रेडिंग)

(२) दृश्य-सज्जाकार का व्यक्तित्व।

मंच की चिनीय परम्परा में नाटकीय वातावरण का निर्माण इसकी परम विशेषता है। पश्चिम का मध्ययुगीन नाटक जिस मंच-मञ्जा के साथ प्रस्तुत होता था उसमें मंच अलंकरण मंच प्रसाधन के प्रति कितना व्यापक और गहन रूप में व्यापकत्व पर आग्रह रहता था वह उस युग के रगमच की एक परम विशेषता है।

ऐतिहासिक रूप में मंच सज्जा-कला का अपूर्व उन्मूलन 'रोम' के शासक हुआ है। जिस वर्ष (१६१८ ई०) इटली के 'फारोस थियटर' में 'थियटर' द्वारा (प्रामीनियम आच) की पहली बार प्रतिष्ठा हुई थी।

इसी रगद्वार-परम्परा से मंच सज्जा कला के उन्मूलन का सारा इतिहास जुड़ा हुआ है। चित्रकला का सम्बन्ध मंच सज्जा से गठित हुआ, तथा गहराई 'डिप्थ' तत्त्व की गृहीत हुई। इसी के साथ ही मंच दृश्य में आयात और परिप्रत्यय (डाइमिंग एण्ड पर्सपेक्टिव) की भी साकार कल्पना हुई। इसी उन्मूलन के साथ ही मंच-मण्डल तथा उसके गहन गिल्प का व्यापार बढ़ा। संयामास के लिए प्रयत्न शुरू हुए तथा मंच दृश्य का सारा व्यापार 'मकेनिज्म' नाम की ओर विकसित हुआ।



प्रेक्षागृह तथा प्रस्तुतिकरण

रंगमंच के भौतिक पक्ष प्रक्षागृह में नाट्य-नग्न में लेकर नाट्य प्रदर्शन तक को प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए एलीजाबीथन मंच के उन्मुक्त प्लेटफार्म तथा घराने की मंच में जकमरियर तथा उमर काल के रंगमंच को अनन्त स्वन-प्रता का भाव दिया। अनन्त दृश्य देने काल में उमर काटव पूर्ण विश्वास के साथ जीता-जड़ना रहा। उमर अनन्त कक्षाएँ घटनाएँ तथा महा काष्पोचित नाट्य व्यापार होने रहे।

रंग मंचन का भीतरी पक्ष—रंगभूमि (स्टेज) और रंगगाथा (प्राडीगरियम) के रूप और आकार मात्र नहीं है बल्कि यह एक जावन्त कला है अपने आप में। इसी लिए हम विक्टर आर्गनिकट रंग स्थापत्य कला की मर्यादा मितरी है।

रंगगाथा के आकार प्रकार से रंगभूमि का अनुपात अपने प्रभाव से अत्यन्त उत्प्रेक्षनीय है। विक्टर आर्ग डायनिमस में दृश्य के बढ़ने का क्षन विस्तार उमर मंच प्रकार का किन तरह प्रभावित करता है तथा वह होना तत्त्व किन तरह नाट्य-लेखन और प्रदर्शन को प्रभावित करने हैं—यह एक मनोरंजक सत्य है।

रंग-स्थापत्य-कला का उमर सम्पूर्ण अर्थ में जानने के लिए हम यहाँ चार प्रतिनिधि (पूर्व प्राधुनिक) रंगमंचना (एन हाउसिंग) की चर्चा करेंगे।

ग्रीक प्रक्षागृह

ग्रीक रंगमंच का क्रमण उदयकमवाह जादू रहस्य से लेकर फिर ड्रामा तक हुआ। इसी के अनुरूप ग्रीक रंगमंचन गहन नृत्य-परिधि फिर पाँचवीं शताब्दी बी० सी० के बाद आर्केस्ट्रा-परिधि मूलक रंगमंचन के रूप में निर्मित हुआ। ग्रीक नाट्यकार अपने युग के रंगमंचन की भौतिक स्थिति में न केवल प्रभावित हुआ बल्कि उसने भी उस विवर्धित किया। जग आर्केस्ट्रा परिधि में नाचते-गाते हुए कोरस के साथ अस्तासत न एक दूसरे अभिनेता की मर्यादाओं और साथ ही बलोज न तीमर पात्र की प्रतिष्ठा की। कोरस की सत्ता में प्रमाण नमी और

अभिनय (पात्र) की मर्याद वृद्धि हुई। इसका प्रभाव यह हुआ कि ग्रीक रंगमंच में गिनाल दण्ड-समूह के बैठने के लिए जो अस्थायी व्यवस्था थी उसमें स्थान पर पत्थर की स्थायी सीढ़ियाँ बनीं। इस तरह प्रेक्षालय और रंगभूमि (एक्टिंग एरिया) का स्थायी, महत् सम्बन्ध स्थापित हुआ।

इस गिनाल रंग भवन का प्रभाव नाट्य लेखन के साथ ही साथ स्वभावतः अभिनय कला और प्रशंगन विधि पर पड़ा। अभिनय की मूल प्रवृत्ति में प्रक्षेपण (प्रोजेक्शन) कला पर अत्यधिक उल दिया गया। प्रशंगन गिल्फ में महत् और उन्नत मुद्राया, नृत्यवत् गतिया और समूहों को बिगड़ महत्व मिला। सारा प्रशंगन, रंग तरह बिनाल दण्ड समूह को रंग में बांधे रहने तथा उन्हें प्रभावित करने के लिए विनोद रूप से रीतिगुह हुआ।

मध्ययुगीन प्रेक्षागृह

पश्चिम में मध्ययुगीन नाटक पहले सब में प्रस्तुत होते थे। बाइबिल की कथाओं का लक्ष्य-पूर्ण प्रशंगन इसकी परम विशेषता थी। लेकिन ज्या-ज्या नाटक की प्रवृत्ति धर्मनिरपेक्ष होती गयी तथा-तथा गिरजा और कथिड्रल में ड्रामा बाहर गया। बाहर आकर यह मध्ययुगीन ड्रामा, यद्यपि बड़ी-बड़ी व्यापारिक कम्पनियों के हाथ में आया किन्तु सब डामा के तीन प्रमुख तत्वों की दृष्टि से अपने स्वरूप में समन्वित और ग्रहण कर रहा।

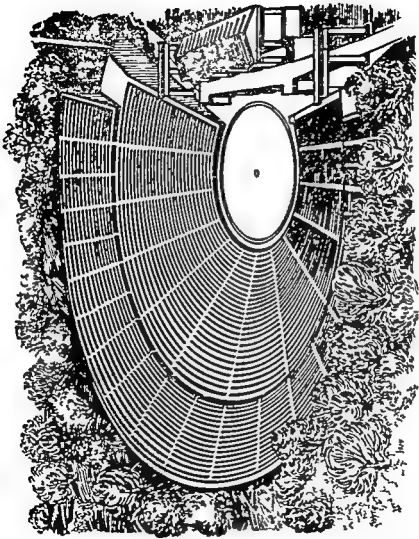
(१) नाटक का घटनाक्रम स्वरूप

(२) निश्चित दृश स्थान का महत्त्व

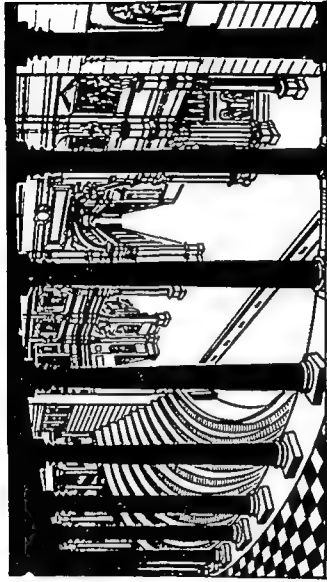
(३) काय का एक स्थान से दूसरे स्थान पर गतिमान रहना।

एक दृश-स्थान से दूसरे दृश स्थान के लिए विभिन्न भवन के बाह्य द्वार (यापागध्य) तथा जल, गडक, मैदान इन सभी स्थानों में नाटकीय 'यापार का स्वातन्त्र्यपूर्ण' प्रदर्शित होता मध्ययुगीन रंगमंच प्रदर्शन की मूल विशेषता थी। ये सारे स्थान स्थल अपने भवन और स्थापत्य स्वरूप में मंच पर यातायात याता जाते थे।

सन् १५०१ ई० में इमिस्ट्री आफ द पब्लिक नाटक के प्रदर्शन में एक तरह मटगठ भवनों के स्वरूप (दृश-स्थान) में परिवर्तन आया था। इनके सामने सामान्य अभिनेता-श्रेणी होता था जिस प्लेटिड या प्लेटपास कहते थे। भवन से बाहर अभिनय दृष्टि स्थल पर अभिनय करने थे। ये भवन-स्थान मंच एक ही पक्ष में स्थित होते थे। उदाहरण के लिए बलन्तनीय (१५४७)



ग्रोस थियटर
(एपीडोरस व भग्नावशेष स पुनर्निर्माण)



ग्रानेम्पिक् थियटर (१५७६) इटली रमकी परिकल्पना उत्सलनीय है ।

का मंच जो एक सौ तीस फुट लम्बा था और जिस पर अनेक भवन द्वार बने थे—एक मिरे पर जहाँ नरक-स्थल था दूसरी ओर जहाँ स्वर्ग भवन। इन दोनों के बीच में गिरजा, कथिडल, प्रोस्ट का घर बाजार और जलमण्ड आदि।

मध्ययुगीन नाटक व प्रस्तुतिव्यवस्था में एक दूसरी चीज़ भी प्रचलित थी। जस नाट्य-दृष्ट या का दगाका व सामन एक व बाद एक चौकिया पर लाना। अथवा 'बगन' के सहारे उक्त मंच पर स्थापित करना। दगाक-बग सुविधानुसार अलग अलग स्थानों पर एकत्र हात और नाट्य चौकिया अपन हृदय महित गतिमान हानी। विशेषकर इंग्लैण्ड में यह रीति सत्रम अठार्व प्रसिद्धि के साथ प्रचलित थी—जहाँ सैकड़ों नृत्य और गाय इन्हीं चौकियां जाने मंचदृश्य को प्रयोग में लाने थे।

मध्ययुगीन नाट्य प्रणाली की कई परम्परायें उत्प्रेक्षनीय हैं। दगाक और प्रस्तुतकर्ता एक दूसरे से बहुत नज़दीक थे। दगाका के बीच किसी तरह का व्यवधान नहीं था। गम्भीर नाट्य मूल में प्रहसन व तत्त्व का मेल एक उत्प्रेक्षनीय बात थी। अभिनेता तथा दगाक में और भी ज्यादा सम्बन्ध मूलजोड़ने के हेतु सामान्य अभिनेताओं का प्रदर्शन में उपस्थित रहना। अभिनय क्षेत्र खूब विस्तृत हान व फलस्वरूप, नाटक का काय-व्यापार घटनाओं व प्रयोगों से भरा रहता, उसकी बहुत बड़ी विनोदता थी। कोई भी घटना या काय बहाने द्वारा न प्रस्तुत होकर वस्तुतः अपन घटित रूप में मंच पर प्रस्तुत होता था। यही कारण है कि पश्चिम का मध्ययुगीन नाटक अतना अधिक घटना धर्मों है और उस में भी कथा-रस का समन्वय इतना ज्यादा और नीला-नारा है। गम्भीर और विदूषक अभिनेताओं का समन्वय तथा कथानक व भीतर प्रत्यक्ष काय तथा घटनाओं में निर्मित छादी-छादी कहानियाँ का भरा रहना इसकी रचना की बड़ी विशेषता थी।

एलिजाबीथन रंगभवन (प्रक्षागृह)

एलिजाबीथन रंग भवन तथा उसकी रंग-स्थापत्य कला को समझने के लिए विद्वान लोग इस पर अनेक प्रभावों की चेष्टा कर रहे हैं। और हम निष्कर्ष पर आते हैं कि यह रंगमंच ही अनेक परम्पराओं की उपनिधि है। मध्ययुगीन तथा रंगमंच का परम्परा एक ओर है तथा दूसरी ओर हम समझते हैं कि यह रंगमंच व नृत्य मेल है। वस्तुतः एलिजाबीथन रंगभवन का नीतिगत रूप प्रत्यक्ष है। बाहर की दीवार अग्नी बग फिट की थी। मंच तैनाति

फिट चौड़ा और साठे मत्ताइस फिट गहरा था। इसमें तीन 'वाल्क्नी' थीं, बारह ग्यारह और नौ फिट ऊँची और बारह फिट चौड़ी। उस तरह इसका अभिनय क्षेत्र परम उल्लेखनीय है। आज के आधुनिक मंच से प्रायः दूना बड़ा मंच। प्राग्गे दणका की ओर बड़ा हुआ, जिस पर दो खम्भा के सहारा 'मडप' बना था।

एलिजाबीथन रगमचन जिसमें प्रायः 'यावसायिक' अव्यावसायिक तथा स्थायी सभी नाट्य मंडलियाँ रहा करती थी—तीन मजिस्ता इसका स्वरूप था। इसके भीतर एक बड़ा प्रागन, तीन तरफ से बरामदों से घिरा हुआ। मुख्य अभिनय क्षेत्र—प्रागन। इसी प्रागन में बना हुआ विस्तृत मंच था। इसके पीछे हा और कक्ष भाग थे जो अतिरिक्त अभिनय क्षेत्र का कार्य करते थे। दोष बरामदे दणका के लिए थे।

एलिजाबीथन मंच एक विस्तृत अभिनय क्षेत्र था जिस पर नाटक का सारा कार्य यापार बिना किसी स्थान ह्रास के होता था। स्थान ह्रास, केवल कथोप कथन से योजित हो जाना था। जमीन के ऊपर का मंच, वाल्क्नी ह्रास प्रथवा युद्ध ह्रास के लिए इस्तमाल होता था।

यस्तुत एलिजाबीथन रगमच में ह्रास के बाद ह्रास, बिना किसी बिराम प्रथवा व्यापार के घटता था। मंच पर अलग अलग अभिनय-क्षेत्र जा मुख्यतः अभिनय के प्रवेश और प्रस्थान से निश्चित कर लिए जाते थे, इस मंच की विचालता और सृजनशीलता के बहुत बड़े उदाहरण थे।

मंच में विभिन्न भाग और अभिनय क्षेत्रों के प्रयोग का उदाहरण हम 'हैमलेट' के पहल मंच की रूपरेखा में प्रकट होना है

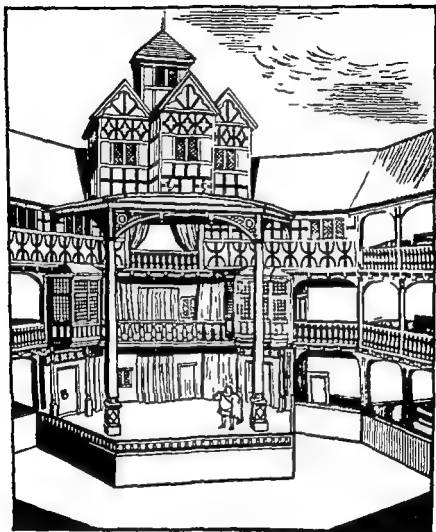
पहला दृश्य कमिन्स के प्राग एक प्लेटफॉर्म
(अपर स्टेज नीचे से बरिखा का प्रवेश)

दूसरा दृश्य कसिल में एक कमरा
(बनादियस और गेट यूड के लिए मिहामन—इनर स्टेज—दरबार के लोग प्लेटफॉर्म पर)

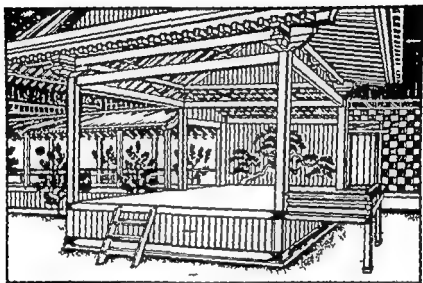
तीसरा दृश्य प्लानिषम का घर
(सर्जेंट और आर्पीलिया का पर्चे के भीतर से प्लेटफॉर्म पर प्रवेश)
भीतरी दृश्य की व्यवस्था के लिए पदा) प्लेटफॉर्म की बायीं ओर प्ले गोन ।)

चौथा दृश्य दो प्लेटफॉर्म
(अपर स्टेज)

पाँचवाँ दृश्य प्लेटफॉर्म का दूसरा भाग
(इनर स्टेज—नीचे 'पोस्ट' और 'हैमलेट' के लिए)



एनोजावायन विद्यटर (गनाव विद्यटर)



जापानी नाह ड्रामा का मच । ग्यार थियटर (मच)
 में इसका समानता उल्लेखनीय है ।

घास्ट का सेंसर द्वार से प्रस्थान, 'मरसिलस' और 'होराशिया' के प्रवेश—
से)

इस तरह एलीजाजीयन मंच पर नाटक की गति अबाध रहती है। मंच के तीन अभिनय क्षेत्रों में तीन प्रकार के विभिन्न काय दृश्य, बिना किसी विराम के चलते हैं। और जहाँ काय व्यापार अथवा दृश्य में दृग काल, स्थान के बारे में किसी विरोध तत्त्वा की आवश्यकता होती है वहाँ नाटककार व्यापनयन में उसकी पूर्ति कर देता है। उदाहरण के लिए पहले अक्षर न पहले दृश्य में वातावरण की चित्रात्मकता।

रेनेसा 'प्रोसीनियम आच मच'

पंद्रहवीं शताब्दी के अंत में इटलियन महाजनों का आवरण रंगमंचों प्रति बढ़ा, जिसमें फनस्वरूप अनेक रंगमंचन निमित्त हुए। इस तरह का महत्वपूर्ण रेनेसा रंगमंचन की स्थापना कुछ पहला वेनिस में पलडिया द्वारा निमित्त (१५७६) 'ओलेम्पिक थियटर' तथा दूसरा पार्मा में एस्पूनी द्वारा निर्मित 'फार्नेस थियटर'।

'ओलेम्पिक थियटर' प्राचीन 'रामन थियटर' का ही विस्तृत प्रतिरूप था, जिसमें मंच और प्रेक्षक भूमि को दृश्यवर्धित विष्ट हुए पाँच प्रवेश-द्वार थे—विशाल खम्भों से सजायित जहाँ से सामने मंच का सारा परिप्रेक्षित दृश्य प्रकट होता था।

विशाल रेनेसा थियटर की प्रकृति, दृश्यत्व और संपीत इन दो महान उपलक्ष्यो के बीच से दूरी जा सकती थी।

दर्शक

दण्ड के बिना किसी भी रगमच की कल्पना नहीं की जा सकती। प्रथम था वह कि दण्ड के लिए ही रगमच के इतने बड़े व्यक्तित्व की कल्पना हुई। दण्ड के लिए मूलतः नाटक लिखे गए। रग भवन उभाय गया, दृश्य राजा, रग गिल्फ की रचना हुई। दण्ड के ही व्यक्तित्व ने हर युग में नाटक की प्रकृति और प्रदर्शन की पद्धति को प्रभावित किया।

नाटक एक सामाजिक और गतिशील कला है, ठीक जीवन की तरह जो हर समय विकसमान और गतिशील रहता है।

रगमच में दण्ड की व्यक्ति नहीं रहना, वह एक समूह अथवा समुदाय में बदल जाता है। क्योंकि सब एक ही भावना के अंतर्गत आ जाते हैं। यो समाज में दण्ड अनेक वर्गों और कोटियों के होते हैं। भोखरा, बल, सुगन्तकी, दुष्मान्तकी, नाह (जापानी) और बाबुकी—इन सभी प्रदर्शनों के लिए विभिन्न प्रकार के दण्ड बग होते हैं।

एक सामाजिक संस्था के रूप में रगमच ने कितने कितने प्रकार में दण्ड का विमोहित किया है। कभी रगमच दण्ड के लिए मंदिर था, कभी माया सब कभी प्रचारक दू कभी तफरीह की जगह कभी फगन परद, कभी मिलन भूमि, कभी बौद्धिक विज्ञान का स्थान। अर्थात् रगमच को दण्ड न जिस रूप में मरक्षण दिया, रगमच का व्यक्तित्व उसी के अनुरूप बना।

उत्पत्ति के लिए पश्चिम में रगमच में, ग्रीक, एलिजारीयन और रस्टा रैगन' रगमच के दण्ड-वर्ग एक दूसरे में मिलते हैं।

ग्रीक रगमच के विषय में यह परम उत्पत्तीय है कि दण्ड के लिए वह रगमच एक धार्मिक संस्था थी। कम से कम वर्ष में दो नाट्य महारंग देरना उनका लिए एक पवित्र धर्म-काय था। गंध में था वह दण्ड-वर्ग जो 'शपानितम' (गहरा न भाग) = अत्रित ज्ञान के गम्भीर दुष्मान्तकी देगन के लिए जीवन जगत के विषय में उनकी रचित रितनी गहरी गरी होगी इसकी कल्पना आज सहज ही की जा सकती है। वह ऐतिहासिक दण्ड इस अर्थ में विचित्र था कि उस जान और भावना में कितना महन उगाव था। कला गान और तब गान—य सब विषय उनका लिए महान विचार था ही सत्य न था, वरन् य सब विषय प्रत्यक्ष रूप में व अपने जीवन में जीते आते थे। 'अस्वास्त्य की उत्पत्ति

दुःसातकी और अरिम्पाकेन की वह समृद्ध सुखान्तकी—य गाना चरम सीमाय
पयेन्म क उस गान वग की जीवनी गति का ही ना उगाहरण है ।

ग्रीक दणक बड़े ही कलात्मक मस्कार क लाग थे । नाटक और प्रशसन
की सारी छविया और खूबिया का जानन परम्पने-बाल । भाषा भाष और
विचार इन तीना स्तरा पर ब बित्तो सचनन थे बन्ना ग्रीक दुःसातकी की
वैसा महान रचना सम्भव न होती ।

ग्रीक की ही तरह एलिजाबीथन दशक भी जीवन जगत क प्रति परम
उत्साही, और उसम प्रत्यक्ष रचि लेने वाले लोग थे । शेक्सपियर का वह युग
बौद्धिक और भावात्मक विकास की एक चरम सीमा का युग था । भाषा
का य, संगीत और राजनीति इन सभी क्षेत्रा म उनकी रचि अनुभूत थी । उस
युग न मनुष्य को ईश्वर की सत्तम अनुपम रचना क रूप म स्वीकार किया था ।
उनकी भाष्या और सवन्न प्रहा था । इसी युग चतना और मौल्य-धार का
दपण है एलिजाबीथन रगमच । धरणा अन्तार आत्मलिप्ता अधविश्वाम
मन्ताराला प्रम अधिविशाल स्वाध धारि इन सभी जीवनधर्मी महन प्रन्ना
की जीवन क बीच स उस युग न दखना समझना चाना था । शेक्सपियर न
अपन रगमच म युग क ऐसा भाव-बोध का वाणी दी है ।

रेस्टोरेशन रगमच का दणक-वग एलिजाबीथन गान म जित्तुल भिन्न
था । चान्म द्वितीय जय राज्य-गद्दी पर बठा ता रगमच जम उमर जावन
विनाम का मुख्य केंद्र हो गया । रगमच का क्षेत्र सामान्य स विगिस्ट वग क
विशाल हो गया । दणक-वग सीमित हो गया । और इस युग न गाना की उम
गम्भीरता स त ग्रहण किया जिम तरह एलिजाबीथन युगन किया था । यह
बबल गान और मनोरजन मात्र रह गया । फगन परत की जगह म हो गयी ।
यह मिलन जुलन का बगाना हो गया । यह इसका फल हुआ कि इस युग का
ड्रामा अथवा रगमच जीवन से बटकर स्वभावतः हाई फगनवन मुगान्तकी क
रूप म विवर्धित हुआ । बमेटी आफ मनम इसी युग-धार की स्वाभाविक
देन हैं ।

इस तरह हर युग का दणक अपन सौन्दर्य-बोध क साथ रगगाना म अना
है और स्वभावतः उमी की रचि और जीवनी गतिन क अनुकूल उत्तरे युग का
रगमच बनता है ।

पाश्चात्य रगमच इतिहास और परम्परा

पाश्चात्य रगमच का प्रादुर्भाव यूरोप में सबसे प्रथम यूनान देश में हुआ— 'थियेटर आफ डायोनिसस' के नाम से। यह रगमच अपने मूल में पूजा अथवा कमकाण्ड के रूप में उद्भूत हुआ। प्राचीन यूनान में लोग अपने देवता 'डायोनिसस' का पूजन बड़े उत्साह और आस्था से करते थे। दूसरा देवता जिसका नाम 'डिम' भी था शराब और उत्साह का देवता था धारोगिक मान-इ और स्फूर्ति का देन वाला। हर तरह की चिन्ता और शोक का हरनवासा था यह। इसका पूजन समारोह धूम-धाम और गीत-बाल के गानों में विशेष रूप से होता था, और यह नाट्य पूजन देवता पवित्र धार्मिक कार्य गमभा जाता था।

डायोनिसस की प्रतिष्ठा में जो कोरस अथवा समूह गान हात थे उन्हें में पश्चिम के ड्रामा का जन्म हुआ। ड्रामा—ट्रेजिडी—जिमका अर्थ है 'गाट सांग' क्योंकि उस पूजा समारोह में बकरे की बलि दी जाती थी। ड्रामा—कामेडी का अर्थ है 'ग्राम गीत', जिसमें आमो-प्रमो की प्रधानता रहती थी। छठी शताब्दी ई० पू० में यूनान के पश्चिम नामक व्यक्ति ने कारस में एक परिवर्तन किया— उसमें वार्ता-वाच का समावेश।

भाग के ड्रामा गायकों ने इसमें क्या-तत्त्व डाला। फिर इसमें एक चरित्र, दो चरित्र और तम-कारस का रूप छाटा जाता गया और पात्र बढ़त गये।

ट्रेजिडी के प्रगटन के नियमों में थियेटर आफ डायोनिसस का निर्माण पाँचवीं ई० पू० में हुआ। यह एवम्स के एन्नापॉलिस नामक पवन र चरणों में स्थित था (और आज तक है)। यह खुला हुआ प्रास्त रगमच अवबत्ताकार है। द्वा-की गीतों की पक्षितयाँ एवं व ऊपर एक चट्टानों काट काटकर बनायी गयी हैं। मंच पत्थर का बना है। और उसका पीछे एक ऊँची दीवार थी। द्वा-की गम्या बोग हजार तक होती थी। मुख्य 'स्त्र' के मध्य में तीन सामन एक नाने ध्वज्युताकार स्टेज और हाता था जिसे आर्केस्ट्रा कहते हैं। द्वा-के मध्य में बसि-वती होती थी जिस पर चारों ओर नृत्य हाता था। इस बनी के पात्र की गीतें गममरम में की थीं जो पुजारिया और गायिका-गा के नियम सुरक्षित रहती थी। यानी के टोक गमन डायोनिसस का पुजारी बढता था। उमर दायी और गूय

देवता एपोलो का पुजारी और वाद्यी और नगर देवता ज्यूस पौलिषस का आसन होता था ।

मार्केस्ट्रा के पीछे उठे हुए मंच की लम्बाई साठ सत्तर फीट और गहराई पन्द्रह फीट होती थी । अभिनय क्षेत्र नीचे-ऊपर की ढाला भूमिका होती थी । ग्रीक कोरस पचास व्यक्तियों का था जो नम्र व कम होकर पन्द्रह का हो गया ।

ग्राक थियेटर का यह सारा प्रदर्शन रीतिबद्ध था । अभिनय वस्त्र, रूप-सज्जा आदि सभी स्तरो से ।

आस्काइलस (५२५ बी० सी०) ग्रीक ड्रामा का जनक माना जाता है । पसिमस से भाग बढकर इसी ने डामा में द्वितीय चरित्र की प्रतिष्ठा की थी ।

मोफोबनीज (४६५ बी० सी०) ने ग्रीक डामा में तृतीय चरित्र की स्थापना की, और इसकी रचना से ग्रीक रंगमंच अपनी धरमसीमा पर पहुँचा । 'यूरोपडीज' प्रतिम उत्तरवर्तीय नाटककार हुआ जिसने एलक्स्ट्रा के माध्यम से अपने बड़े व्यक्तित्व का परिचय दिया ।

दूसरी ओर 'ग्रीक कामेडी' की परम्परा है— जिसमें उत्तरवर्तीय नाटककार हैं—'मरिस्टोफीन' और 'मिनर' ।

रोमन थियेटर

रोमन रंगमंच का प्रारम्भ पास से होता है जो केतुला 'रतीलाना' के नाम से प्रसिद्ध है । वस्तुतः इसका मकसद रोम के दक्षिण में 'अतेला' नगर से है—जहाँ नाटक का इस प्रहसनात्मक रूप का श्रीगणेश मिलता है । इसमें मौलिक कला का स्थान पर टाट्टा उरियो का आधार पर भटती प्रहसन, अभिनय आदि के भीतर रूप मिलते थे ।

वाट में रोमन रंगमंच ग्रीक रंगमंच का प्रभाव का सबर विनमित हुआ । इसकी रंगगाथा का अधिक विस्तार हुआ । मंच का क्षेत्र बना । मंच अब सब खुला था, किन्तु रोमन रंगभवन-कला की श्रुति यह स्पष्ट है कि मंच को ये लोग छतदार बनाना चाह रहे थे ।

प्लेटम (२५४ बी० सी०) पहला रोमन नाटककार था, जिसकी नाट्य-कला 'मिनर' से सीधे प्रभावित था । नवल 'मिनर' रोमीय लंगरा में यह उत्तरवर्तीय नाग है जिसमें कुछ मन्त्रवपुण योग दिया । वस्तुतः उस समय रोमा राष्ट्र के सामने मूलतः राजनीतिक तथा सामाजिक-जन प्रश्न थे, और जिन जिन नियमों द्वारा रोमन समाज की गिन्या-गिना होती चाहिये थी, उन्ही का उपयोग

मिनेरा न अपने नाटका में किया। उसने इस तरह एक विशेष प्रकार की सामाजिक तथा राजनीतिक नैतिकता का प्रसार प्रचार अपना नाटका में किया जिसने कारण उसमें दुःशातरी की आत्मा मर गयी। यह हीन तथा ममूच मध्य युग के पूर्वाद्ध तक रही। दूसरी ओर गीर और इसाई पादरी इसमें विशेषी हाँ गये और उन्होंने नाटका को पाप के प्रसार का साधन घोषित कर नाटकाका का स्थान बहुत तुच्छ सिद्ध किया। और इस तरह करीब तीन सौ वर्षों तक नाटय साहित्य की रचना नहीं हुई और यूरोप पर अंधकार युग पूर्ण रूप से छा गया।

मिडियल पियेटर

मध्ययुग के उत्तरार्ध में नाटक का फिर से जीवन दान मिला। प्रथम ईसाई पात्रियों का चिराय घटा और ईसाई धर्म के विचारों तथा सिद्धान्तों के प्रचार के लिये फिर से नाटक और रगमच अपनाय गये। इस तरह प्रदर्शन की रगभूमि गिराकर हुआ। प्रारम्भ में जो नाटका गिराये। में लेने गये वे ईसा के जीवन से मृत के रगम थे। ईसा का नाम उनकी ईश्वरीयता उनमें प्रमत्तय इन मृत पक्षा पर प्रमाण डालकर नाटक उनका जो धर्म की ओर सप्रसार करने का प्रयास करते थे। इनके पश्चात् पात्रियाँ ईसाई सना की जीवन के दिग्गम पर नाटक धर्म की अनुमति ली। बन्धुन उन नाटका में ड्रामा के पात्र भी महत्वपूर्ण भूमिका में उनमें कोई आक्षेपण ही है।

मध्ययुगीन दुःशातरी रचनाना के लिये किसी श्रष्ट और सभ्य न मनुष्य का मानस्मिक भाग्य-परिवर्तन ही दुःशातरी का आधार था। उनमें विचारों के अनुसार मनुष्य भाग्य के हाथों में गिरना मात्र है।

किन्तु नाटय प्रदर्शन जम जम लावप्रिय हुआ नाटक में से धीरे धीरे उमनत्व कम हुआ गया। बादशिर की कथा में जनता ऊपर दूसरी कथा की ओर भागी। कथा में प्रहसन के तत्त्व ध्यान गुम् हुण। इसी समय के रग जो अभी बहुत पठन पत्र द्वारा रगमच में वन्दित विद्य गये थे इस शाय में फिर वापस आ गये और अपना रग चमकारा में दर्शन का मन माहने लग। इस तरह के चमत्कार (मिरकिन्) नितिवता (मारस्टीज) और रहस्य (मिस्ट्रीज) ये तीनों तत्त्व रगमच की प्रवृत्ति के मूल स्वर बन गये। रहस्य-तत्त्व उन नाटका में विशेष रूप से होता था, जो किसी मृत के जीवन के आधार से रचित होते थे। नितिवता तत्त्व मनुष्य का उपदेन देने का, तथा उम परिवर्तन देने वाले नाटका में

मुख्य हुआ। 'मारैल्टी प्ल' इस युग की नाट्यधारा की उल्लेखनीय प्रवृत्ति सिद्ध हुई। इसमें नाट्य शिल्प, चरित्र-बोध, चरित्र संघर्ष तथा स्वाभाविकता—इन तत्त्वों को विशेष आग्रह मिला। इन्हीं नाटकों में आगे चलकर छोटे छोटे सामाजिक नाट्य दृश्य (इंटरल्यूड) मिलाये गये। इनमें रंगमंच क्षेत्र में सामाजिक यथार्थ तत्त्व की प्रतिष्ठा की दिशा में बहुत बल मिला। धीरे धीरे इन मध्या कियों (इंटरल्यूड्स) का महत्त्व बढ़ने लगा। इनके प्रदर्शन-तत्त्व की धार दशकों का आकर्षण सबसे ज्यादा बढ़ा। इंग्लैण्ड, फ्रांस इटली और स्पेन—इन सभी देशों के रंगमंच की, इस काल में यही विशेषता थी।

इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप व्यवसायिकी रंगमंच के उदय का वातावरण साफ दिखने लगा।

रिनेसां—नवजागरण काल

मध्ययुग समाप्त होने पर यूरोपीय नवजागरण का काल आरम्भ हुआ। पंद्रहवीं शती के कुछ पूर्व से ही प्राचीन यूनानी तथा लैटिन पाण्डुलिपियों की खोज शुरू हुई किन्तु १४५३ में कुस्तुनिमी पर तुर्की का अधिकार होना के उपरान्त उसका ज़म बहुत तीव्र गति में आगे बढ़ा। सिसिरो, हारेन और विर्गिलियन आदि की रचनाएँ सामने आयीं। उनकी कृतियों का प्रभाव तो नवयुग पर पड़ा ही, किन्तु सबसे अधिक प्रभाव पड़ा अरस्तू के काव्यशास्त्र का जो अरब और सीरिया से पुनः प्राप्त किया गया। सन १३६५ में ट्रेण्ड नामक स्थान पर एकत्र पारियों की सभा ने अरस्तू के काव्यशास्त्र को वही महत्ता प्रदान की जो ईसाई धर्म के नियमों को मिलती है।

पुनर्जागरण काल का यह कलासकी आन्दोलन इस तरह इटली में चलकर फ्रांस पहुँचा और इस तरह हमने यूरोप के प्रायः सभी सभ्य देशों में अपना प्रभाव डाला। इस तरह लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में इन्हीं एक ही कलासकी प्रभाव का स्वर उठित रहा। यहीं तक, सत्रहवीं शताब्दी में फ्रान्सीसी काव्य चिन्तन निरन्तर कलासकी आन्ध्र की ओर झुकता गया। और यही लगभग १६३६ के उपरान्त उसका वह रूप विकसित हुआ जिसमें 'नियोज्यतासिद्धि' अर्थात् नवीन कलासकी मत की स्थापना मिली।

'रिनेसां' युग में भी मुख्यतः दुमांतकी नाटक लिखे गये। उनमें मनुष्य का प्रपनियति के अधीन न दिखाने, मनुष्य के चरित्र के ही अधीन नियति को स्थापित करने की चेष्टाएँ की गयी हैं। मध्ययुगीन पारमि नाटकों के चरित्र में नैतिक

या धार्मिक दोष होना आवश्यक नहीं है—नेवल असमत, अयुक्तियुक्त, अनुचित काय करना ही उनके पर्याप्त दोष हो सकते हैं ।

इससे भी आगे नियोजितासकी' काल में फ्रांस में 'रासीन और वालतेयर' के दुष्टान्तकी नाटक एक और भी नवीन दृष्टिकोण से लिखे जाने लगे, जिनमें नायक को कृत्रिम रूप से उदात्त, महामना और तजस्वी बनाकर प्रेम और वक्तव्य दोनों ही महान आदर्शों के बीच पिसत हुए दिखाकर वरुणा भाव उत्पन्न किया गया । अर्थात् चरित्र-दोष से ही वरुणा भाव का उदय निम्नाया गया ।

किन्तु रगमचीय महत्त्व के स्तर पर फ्रांस में अब तक, फिर भी कुछ उल्लेखनीय न हो सका । जबकि सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध बीत रहा था । वस्तुतः यह उल्लेखनीय यश मिला स्वेन को । लोप (१६हवीं सदी) और कल्डेरान उस समय स्पनिश रगमच के महान नाट्यकार उदित हुए । इन दोनों के व्यक्तित्व और रचनाशक्ति से रगमच का स्तर इतना ऊँचा उठा कि उसी के सहारे एलिजाबीथन रगमच का घरातल सहज ही ऊँचा उठ गया । इंग्लैण्ड के लिए वस्तुतः यह बड़े सौभाग्य की बात थी ।

एलिजाबीथन थियेटर

इंग्लैण्ड के सांस्कृतिक इतिहास में सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध अग्रतिम है । १६०० ई० से लेकर १६४२ तक के बीच में शेक्सपियर, आपमन, डेकर, जासन ममिजर, मिडिल्टन, बेरेट्टर, फोड और अनेक जसी प्रतिभाओं ने इस काल को अमर बना लिया । इतिहास में यह काल महारानी एलिजाबेथ से लेकर विनियम और 'मेरी' तक फैला है ।

नाट्य प्रवृत्ति और परम्परा बोध के रूप में एलिजाबीथन रगमच पहले चरण में जनता का रगमच था । हर वय के स्त्री-पुरुष इस युग की रगनाला में इकट्ठे होने थे । नोत्रल, साह से लेकर सामान्य स्त्री-पुरुष तक । इसका फल नाट्यकार पर यह हुआ कि वह नीचे से ऊपर तक समाज के सभी स्तरों को ध्यान में रखकर अपनी रचना करता था ।

ग्लोब थियेटर इस युग के रगमच की प्रवृत्ति का सच्चा द्योतक है—जिसके रग-तर्त्वा में एक ओर प्लेटफार्म स्टेज के तत्त्व हैं, तथा दूसरी ओर अनेक मध्ययुगीन नाट्य धर्मितायें कायरत हैं । उसी 'ग्लोब थियेटर' के ही मानचित्र के आधार पर उम्र समय की सभी रगशालायें बनीं ।

‘एलिजाबीथन रंगमंच में मुख्यतः दो प्रकार की नाट्य परम्परायें काम कर रही थी, पहली—पॉलिक थियेटर’ की, दूसरी ‘ग्राइवट थियेटर’ की। चाल्मर द्वितीय के शासन-काल में यही दूसरी धारा अपेक्षाकृत अधिक प्रबल हुई थी। इसका मंच में हृदय-भञ्जा, प्रकाश आदि की प्रतिष्ठा हुई तथा उसमें मुक्त धाकावाली मंच का स्थान पर बल मंच की परम्परा गुरू हुई।

चिन्तु आगे चलकर एलिजाबीथन रंगमंच में सामान्य जनता का स्थान पर राज-दरबार और ग्राही घराने के लोग भरने लगे। इसका फल यह हुआ कि नाटक और रंगमंच में सबका नया स्वरूप और नया स्वर उभरा। इसमें सबसे प्रभुत्व स्वर था उस समय के जीवन और परिस्थिति का नाटक में अभिव्यक्ति देना।

इस युग के रंगमंच और नाटका की मुख्य प्रवृत्ति थी

- (१) शेक्सपीरियन दुर्गान्तकी।
- (२) रोमांटिक सुन्यातकी तथा
- (३) ट्रिजिटी-कामेडा के सम्मिलन की।

एलिजाबीथन युग का रंगमंच मूलतः शेक्सपियर का रंगमंच था। शेक्सपियर ने सम्पूर्ण नाट्य-साहित्य में उस युग का रंगमंच की सारी प्रवृत्ति और रंग परम्परायें बड़े गहन रूप में प्राप्त हैं। ग्रीक थियेटर का वह दूसरा एलिजाबीथन थियेटर ही है जिसका रंगमंच मिथ्यान्त और नाट्य उपलब्धियाँ ससार में इतनी महिमायें सिद्ध हुई।

फ्रेंच क्लासिकल धारा

प्रायः शेक्सपियर के समय में ही फ्रांस में एतकजिह्वा हाई नामक नाटक-कार जन्म हुआ। चिन्तु इस युग का पहला महत्त्वपूर्ण व्यक्ति ‘पेर कर्नोत्’ (१६०४-१६८४) हुआ जिसने फ्रेंच रंगमंच में एक नया जागरण पैदा किया। ‘ले सिड’ उसका महत्त्वपूर्ण नाटक है। रामन कथावस्तु पर आधारित दो दुर्गातकी ‘होरस’ (१६४०) तथा ‘मिना’ (१६४१) भी उल्लेखनीय हैं।

इस धारा का समय महत्त्वपूर्ण नाटककार मालियर (१६२२-१६७३) हुआ जिसका व्यक्तित्व में ‘गणद पहली बार नाटककार निर्देश और अभिनय के तीनों व्यक्तित्व एकीकृत हुए। मालियर द्वारा सुन्यान्तकी की परम्परा में मूलतः नया स्वर, नया स्वर और सबका नया रंगमंच का बोध लगा। इसका नया—‘सुन्यान्तकी’ का मुख्य ध्येय मानद द्वारा शिक्षा प्रदान तथा सुधार है। सुन्यान्तकी,

व्यक्ति-विशेष पर आधारित न होकर समाज विशेष अथवा वर्ग विशेष पर आधारित रहती है।'

(टाटफ)

दूसरी ओर कानिते और 'रेसीन' मूलतः नाटककार के रूप में कवि थे। और उस युग की फ्रेंच क्लस्सिकल धारा के गान्धर्वी व्यक्तित्व थे।

इन सारी नाट्य उपलब्धियों की चरमसीमा थी १६८६ ई० में 'कोमेडिया फ्रांसे' की पेरिस में स्थापना—जिसमें अनेक रंग धाराओं तथा नाट्य मंडलियों का सहज संगम मिश्र हुआ।

रेस्टोरेशन थियेटर

पश्चिम के रगमच इतिहास और परम्परा अध्ययन में आधुनिक युग में पून-बाल तब में रेस्टोरेशन थियेटर को लेना होगा। चार्ल्स द्वितीय का राज सिंहासन पर लौटना और उसकी रगमच प्रियता तथा सरक्षण इन सभी तत्वों का हाथ रेस्टोरेशन में है। इस काल की मुख्य रंग परम्परायाँ हैं

(१) सुशान्तकी (रेस्टोरेशन कामेडी)

(२) हिरोइक ड्रामा

य दोनों नाट्य प्रकृतियाँ उत्पत्तीय हैं। निकोलस रोवे "स काल का अन्तिम नाट्यकार था।

रेस्टोरेशन रगमच के अन्तिम चरण से ही पश्चिम के रगमच में इस समय के लक्षण मिलने लगे, कि रगमच की दिशा मूलतः यथायवाद और उससे प्राप्त नये युग की ओर मुड़ने जा रही है। रगमच का वास्तविक सरक्षण भय राजा न होकर समाज का सर्वथा नया वर्ग जान जा रहा है—नागरिक साहकार उदीयमान मध्यवर्ग।

वस्तुतः इसी नये वर्ग ने, दान्य भाव से लेकर विषय-वस्तु और यथाय-वोध तब पश्चिम के रगमच को प्रभावित किया। और इसी महा प्रभाव से धीमे उदित हुआ पश्चिम का आधुनिक रगमच।

ग्रथ मे प्रयुक्त कुछ विशिष्ट अंग्रेजी-हिन्दी

पारिभाषिक शब्दावली

Accent	स्वराघात
Alienation	भाव निरपेक्षता
Amphitheatre	रंगघाट
Appearance	प्रवर्तण
(Theatre) Architecture	रंग स्थापत्य
Arena	रंगस्थली
Aside	जनान्तिक
Auditorium	प्रेक्षागृह
Ballet	बले
Business (Stage)	रंगचर्या
Stage Action	रंग व्यापार
Character ensemble	पात्र समूह
Coherence	संगति
Cast	पात्र
(Supporting)	सहपात्र
Catastrophe	प्रलय
Character	चरित्र
(Stock)	रूढ चरित्र
Choreographic	नृत्यपरव
Choral comedy	सुगान्धवी
Composition	संरचना
(Pictorial)	चित्रवन
Complication	सरट
Convention	रूढि
Crisis	संघर्ष
Cyclorama	गगनिका

Denouement	निवहण
Dancing circle	नृत्य परिधि
Dimension	आयाम
Discovery	अन्वेषण
Duration	समय
Dramatic material	नाट्य वस्तु
Exposition	उद्घाटन
Expressionism	अभिव्यक्तवादा
Farce	प्रहसन
Formalism	रूपवाद
Foreshadowing	पूर्वछाया
Functional	कार्यमूलक
Grouping	समूहन
Harmony	संगति
Illusion	सत्याभास
Illusionistic	सत्याभासी
Impersonation	परिहाराण
Improvisation	अनुरचना
Interlude	मध्याकी
Level	धरातल
Make belief	प्रतीति छन
Make up	रूपसज्जा, रूपसिंहार
Mask	मुखौटा
Masking	आच्छादन
Melodrama	धतिनाटक
Mime	चिह्नन नवल
Modulation	उत्तार चरण
Motivated	हनुपूण
Motivation	हनु
Movement	गतिचचार
Magic	जादू इन्द्रजाल सम्भोहन
Multiple Stage	बहुपरानती मंच (बहुदृश्यी)
Naturalism	प्रकृतवा
Offstage	नैपथ्य

Open Air Theatre	खुला रंगमंच
Operatic	संगीतधर्मी
Orchestration	स्वर संगति
Over Acting	अतिरजित अभिनय
Pageant	पेजेंट चौकी
Pantomime	अभिनटन
Performance	अनुष्ठान, प्रदर्शन, प्रयोग
Pitch	तारत्व
Pose	भंगिमा
Point of attack	आक्रमण बिंदु
Posture	देहभंगी
Presentation	उपस्थापन
Presentational	भावधर्मी
Production	प्रस्तुतिकरण, प्रदर्शन, प्रयोग, प्रस्तुति
Prologue	प्रस्तावना
Prop	उपकरण
Proscenium Arch	रंगद्वार
Projection	प्रक्षेपण
Pictorial	चित्रात्मक
Picture frame	चित्रबच
Perspective	परिप्रेक्ष्य
Panoramic Movement	दृश्यवत, दृश्याकित गतिसंचार
Representation	प्रतिनिधान
Representational	साहाय्यमूलक
Ritual	धर्मकाण्ड, कर्मकाण्ड
Roofed Canopy	मंडप
Sequence	धनुक्रम
Set	दृश्यवच
Setting	दृश्यसज्जा
Spectacle	दृश्यता
Speech	वाक
Stage	मंच
Stage Design	मंचावन
Stage Direction	मंचनिर्देशन

Stage Technician	मचशिल्पी
Stage Down	रगपीठ
Stage Up	रगशीष
Stage Wagon	यानमच, वाहनमच
Stress	बलाघात
Style	रीति
Stylized	रीतिधर्मी
Synchronization	एकावय
Tempo	गति
Theatre	रगमच
Theatre Arts	रगमच बलाए
Theatre Folk	लोक रगमच
Theatre Open Air	मुक्ताकाशी, खुला रगमच
Theatre Professional	पेशेवर व्यवसायी
Tone	स्वरक
Tragedy	दुःखान्तकी
Up Stage	रगशीष
Unity	अविविक्ति
Volume	घनत्व
Well made play	सुवदनाटक
Wing	पार्श्व

